॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ अथर्ववेद संहिता ॥

॥ अथर्ववेद ॥

॥ अथ पञ्चमं काण्डम् ॥

श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विषय सूची

सूक्त १ – अमृता सूक्त 5

सूक्त २ – भुवनज्येष्ठ सूक्त 10

सूक्त ३ – विजयप्रार्थना सूक्त 16

सूक्त ४ – कुष्ठतक्मनाशन सूक्त 23

सूक्त ५- लाक्षा सूक्त 28

सूक्त ६ – ब्रह्मविद्या सूक्त 32

सूक्त ७ – अरातिनाशन सूक्त 39

सूक्त ८- शत्रुनाशन सूक्त 44

सूक्त ९ – आत्मा सूक्त 49

सूक्त १० – आत्मरक्षा सूक्त 52

सूक्त ११ – संपत्कर्म सूक्त 56

सूक्त १२ – ऋतयज्ञ सूक्त 62

सूक्त १३ – सर्पविषनाशन सूक्त 68

सूक्त १४- कृत्यापरिहरण सूक्त 74

सूक्त १५ – रोगोपशमन सूक्त 80

सूक्त १६ – वृषरोगशमन सूक्त 85

सूक्त १७ – ब्रह्मजाया सूक्त 89

सूक्त १८ – ब्रह्मगवी सूक्त..... 98
सूक्त १९ – ब्रह्मगवी सूक्त..... 105
सूक्त २० – शत्रुसेनात्रासन सूक्त..... 112
सूक्त २१ – शत्रुसेनात्रासन सूक्त..... 119
सूक्त २२ – तक्मनाशन सूक्त..... 125
सूक्त २३ – कृमिघ्न सूक्त..... 132
सूक्त २४- ब्रह्मकर्म सूक्त..... 138
सूक्त २५- गर्भाधान सूक्त..... 149
सूक्त २६ – नवशाला सूक्त..... 155
सूक्त २७ – अग्नि सूक्त..... 160
सूक्त २८- दीर्घायु सूक्त..... 165
सूक्त २९- रक्षोच्च सूक्त..... 173
सूक्त ३०- दीर्घायुष्य सूक्त..... 181
सूक्त ३१- कृत्यापरिहरण सूक्त..... 189

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त १ – अमृता सूक्त

वरुण की स्तुति

ऋधङ्नन्त्सो योनिं य आबभूवामृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा ।
अदब्धासुभ्राजमानोऽहेव त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि ॥५,१.१॥

जो दिन के सदृश आलोकित रहने वाला है, तीनों लोकों का पालन तथा संरक्षण करने वाला है और जिसने तीनों भुवनों को धारण किया है, वह हिंसारहित और अनश्वर प्राणवाला, श्रेष्ठ जन्म लेकर(शरीर रूप में) वर्द्धित होने वाला , समृद्धि वाला तथा मननशील (आत्मा) अपने उत्पत्ति स्थान से प्रकट हुआ ॥५,१.१॥

आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि ।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत ॥५,१.२॥

जो प्रथम जीवात्मा धर्मपूर्ण कर्म को करता है, वह अनेकों श्रेष्ठ शरीरों को धारण करता है । जो अस्पष्ट वाणी को जानते हुए अन्न की कामना करता है, वह प्रथम उत्पन्न (जीवात्मा) अपने उत्पत्ति स्थान से प्रकट हुआ ॥५,१.२॥

यस्ते शोकाय तन्वं रिरेच क्षरद्धिरण्यं शुचयोऽनु स्वाः ।
अत्रा दधेते अमृतानि नामास्मे वस्त्राणि विश एरयन्ताम् ॥५,१.३॥

जो आत्मा धर्माचरण द्वारा कष्ट सहते हुए, स्वर्ण सदृश अपनी कान्ति को बिखेरने के लिए आपके शरीर में प्रविष्ट हुआ ।उस धर्माचारी आत्मा को द्यावा-पृथिवीं अमर नाम प्रदान करते हैं और प्रजाएँ वस्त्र प्रदान करती हैं ॥५,१.३॥

प्र यदेते प्रतरं पूर्व्यं गुः सदःसद आतिष्ठन्तो अजुर्यम् ।
कविः शुषस्य मातरा रिहाणे जाम्यै धुर्यं पतिमेरयहथाम् ॥५,१.४॥

जो स्थान-स्थान पर बैठकर जरारहित, प्राचीन तथा सर्वप्रथम ईश्वर का चिन्तन करके ईश्वर को प्राप्त कर चुके हैं। उनके समान ही ईश्वर का चिन्तन करके प्रारूप बहन को भार ढोने वाले, इस विवेकवान् तथा बलवान् राजा को ईश्वर की प्राप्ति कराएँ ॥५.१.४॥

तदू षु ते महत्पृथुज्मन् नमः कविः काव्येना कृणोमि ।
यत्सम्यञ्चावभियन्तावभि क्षामत्रा मही रोधचक्रे वावृधेते
॥५.१.५॥

हे विस्तृत पृथ्वी के अधिष्ठातादेव ! हम अथर्व विद्या के ज्ञाता पुरुष अपनी शास्त्र कुशलता के द्वारा आपको विशाल अन्न की हवि समर्पित करते हैं, क्योंकि धरती को स्थिर रखने वाले 'दो' (तत्त्व) चक्र के सदृश गतिशील इस धरती पर बढ़ रहे हैं ॥५.१.५॥

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यंहुरो गात्।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ
॥५.१.६॥

अषियों ने मनुष्यों के लिए निषेधरूप, जो सात मर्यादाएँ निर्धारित की हैं, उनमें से एक का भी उल्लंघन करने पर वह पापी होते हैं । मर्यादाओं का पालन करने पर ध्रुव (श्रेष्ठ) स्थानों में स्थित होते हैं ॥५,१.६॥

उतामृतासुर्व्रत एमि कृन्वन्न् असुरात्मा तन्वस्तत्सुमद्गुः ।
उत वा शक्रो रत्नं दधात्यूर्जया वा यत्सचते हविर्दाः ॥५,१.७॥

हम व्रतधारी बनकर कर्मों को करते हुए, अविनाशी प्राणशक्ति से युक्त होकर आ रहे हैं। इसलिए हमारी आत्मा, प्राण और शरीर गुणवान् बन रहे हैं। जो समर्थ बनकर हवि समर्पित करते हैं, उनको इन्द्रदेव रत्न आदि धन प्रदान करते हैं ॥५,१.७॥

उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडे ज्येष्ठं मर्यादमह्वयन्त्स्वस्तयह ।
दर्शन् नु ता वरुण यास्ते विष्ठा आवर्व्रततः कृणवो वपूंषि
॥५,१.८॥

पुत्र अपने क्षत्रिय (रक्षक) पिता की वन्दना करे और कल्याण प्राप्त करने के लिए श्रेष्ठ मर्यादापूर्ण धर्म का आवाहन करे । हे वरुणदेव ! आपके जो विशेष स्थान हैं, उनको दिखाते हुए आप बारम्बार घूमने वाले प्राणियों के शरीरों का सृजन करते हैं ॥५,१.८॥

अर्धमर्धेन पयसा पृणक्ष्यर्धेन शुष्म वर्धसे अमुर ।
अविं वृधाम शग्मियं सखायं वरुणं पुत्रमदित्या इषिरम् ।
कविशस्तान्यस्मै वपूंष्यवोचाम रोदसी सत्यवाचा ॥५,१.९॥

अदिति पुत्र मित्रावरुण को हम समृद्ध करते हैं । हे बलशाली वरुणदेव ! आप किसी से आवृत नहीं हैं। आप आधे पय (पोषक रस) से इस (जग) को समृद्ध करते हैं और आधे से स्वयं समृद्ध होते हैं । हे द्यावा-पृथिवी के अधिष्ठाता देव ! विद्वान् ऋषियों द्वारा प्रशंसित शरीरों का ह्म (वरुणदेव से) वर्णन करते हैं ॥५,१.९॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त २ – भुवनज्येष्ठ सूक्त

इंद्र की महिमा का वर्णन

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो यज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रून् अनु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥५,२.१॥

संसार का कारणभूत ब्रह्म स्वयं ही सब लोकों में प्रकाशरूप में संव्याप्त हुआ, जिससे प्रचण्ड तेजस्वी बल से युक्त सूर्य का प्राकट्य हुआ। जिसके उदय होने मात्र से (अज्ञान-अन्धकाररूपी) शत्रु नष्ट हो जाते हैं। उसे देखकर सभी प्राणी हर्षित हो उठते हैं ॥५,२.१॥

ववृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥५,२.२॥

अपनी सामर्थ्य से वृद्धि को प्राप्त हुए अनन्त शक्तियुक्त (यह देव) शत्रुओं के अन्त:करण में भय उत्पन्न करते हैं। वह सभी चर-अचर प्राणियों को संचालित करते हैं। ऐसे देव की हम (याजकंगण) सम्मिलित रूप से एक साथ स्तुति करके उन्हें तथा स्वयं को आनन्दित करते हैं ॥५.२.२॥

त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वदोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः
॥५.२.३॥

हे देव ! सब यजमान आपके लिए ही अनुष्ठान करते हैं । जब यजमान विवाहोपरान्त दो या एक सन्तान के बाद तीन होते हैं, तो प्रिय लगने वाले (सन्तान) को प्रिय (धन या गुणों) से युक्त करें । बाद में इस प्रिय सन्तान को पौत्रादि की मधुरता से युक्त करें ॥५.२.३॥

यदि चिन् नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयः शुष्मिन्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः
कशोकाः ॥५.२.४॥

हे देव ! आप जिस समय सोमपान से आनन्दित होकर धन-सम्पदा पर विजय प्राप्त करते हैं। उस समय ज्ञानी स्तोतागण आपकी ही स्तुति करते हैं । हे देव ! आप हमें तेजस्विता प्रदान करें, दुस्साहसी असुर कभी आपको पराभूत न कर सकें ॥५.२.४॥

त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥५.२.५॥

हे देव ! आपके सहयोग से हम रणभूमि में दुष्ट शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं । युद्ध की इच्छा से प्रेरित होकर अनेक शत्रुओं से हम भेंट करते हैं। आपके वज्रादि आयुधों को हम स्तोत्रों द्वारा प्रोत्साहित करते हैं । स्तुति मंत्रों से हम आपकी तेजस्विता को और भी तीक्ष्ण करते हैं ॥५.२.५॥

नि तद्दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्न् आविथावसा दुरोणे ।

आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥५.२.६॥

हे देव ! आप जिस यजमान के घर में हविरूप अन्न से परितृप्त होते हैं, उसे दिव्य और भौतिक सम्पदा प्रदान करते हैं । सम्पूर्ण प्राणियों के निर्माता, गतिशील द्युलोक और पृथ्वीलोक को आप ही सुस्थिर करते हैं। उस समयआपको अनेक कार्यों का निर्वाह करना पड़ता है ॥५.२.६॥

स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्ष्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥५.२.७॥

स्तुत्य, विभिन्न स्वरूपों वाले, दीप्तिमान् , सर्वेश्वर और सर्वश्रेष्ठ आत्मीय (देव) की हम स्तुति करते हैं। वह अपनी सामर्थ्य से वृत्र, नमुचि, कुयव आदि सात राक्षसों के

विनाशकर्ता तथा अनेक असुरों के पराभवकर्ता हैं ॥५,२.७॥

इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद्विश्वमर्णवत्तपस्वान् ॥५,२.८॥

ऋषियों में श्रेष्ठ और स्वर्गलोक के आकांक्षी बृहद्दिव ऋषि इन (देवों) को सुख प्रदान करने के लिए ही इन वैदिक मन्त्रों का पाठ करते हैं। वह तेजस्वी, दीप्तिमान् इन्द्रदेव विशाल पर्वत (अवरोध) को हटाते हैं तथा शत्रु पुरियों के सभी द्वारों के उद्घाटक हैं ॥५,२.८॥

एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत्स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥५,२.९॥

अथर्वा के पुत्र महाप्राज्ञ बृहद्दव ने देवों के लिए स्तुतियाँ कीं । माता सदृश भूमि पर उत्पन्न पवित्र नदियाँ, पारस्परिक भगिनी तुल्य स्नेह से जल प्रवाहित करती हैं तथा अन्न-बल से लोगों का कल्याण करती हैं ॥५.२.९॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त ३ – विजयप्रार्थना सूक्त

अग्नि देव, भारती, सरस्वती, इंद्र की स्तुति और प्रशंसा

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयहम ॥५,३.१॥

हे अग्निदेव ! संग्रामों या यज्ञों के समय हममें तेजस्विता जाग्रत् हो । आपको समिधाओं से प्रज्वलित करते हुए हम अपनी देह को पशत्रु ष्ट करते हैं। हमारे लिए चारों दिशाएँ अवनत हों । आपको स्वामिरूप में प्राप्त करके हम शत्रु सेनाओं पर विजय प्राप्त करें ॥५,३.१॥

अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषां त्वं नो गोपाः परि पाहि विश्वतः ।

अपाञ्चो यन्तु निवता दुरस्यवोऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत्॥५.३.२॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे शत्रुओं के क्रोध का दमन करते हुए दुर्धर्ष होकर हमारी सभी प्रकार से सुरक्षा करें । वह भयभीत होकर निरर्थक बातें करने वाले शत्रु पराङ्मुख होकर लौट जाएँ। इन शत्रुओं के मन-मस्तिष्क भ्रमित हो जाएँ ॥५.३.२॥

मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः । ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामायास्मै ॥५.३.३॥

अग्निदेव के साथ मरुद्गण, विष्णु और इन्द्र आदि सभी देवगण युद्धकाल में हमारा सहयोग करें । अन्तरिक्ष के समान विस्तृत लोक हमारे लिए प्रकाशमान हों । हमारे इन अभिलषित कार्यों में वायुदेव अनुकूल होकर प्रवाहित हों ॥५.३.३॥

महां यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवा अभि रक्षन्तु मेह
॥५,३.४॥

त्विग्गण हमारी चरु, पुरोड़ाशादि यज्ञ सामग्री को आहुतियों के रूप में देवताओं को समर्पित करें। हमारे मन के संकल्प पूर्ण हों । हम किसी भी पाप में संलिप्त न हों । हे विश्वेदेवो ! आप हमें आशीर्वचने प्रदान करें ॥५,३.४॥

मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मयि आशीरस्तु मयि देवहूतिः ।
दैवाः होतारः सनिषन् न एतदरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः
॥५,३.५॥

श्रेष्ठ यज्ञादि कार्यों से प्रसन्न होकर सभी देवगण हमें ऐश्वर्य प्रदान करें । हम देवशक्तियों का आवाहन करें । प्राचीनकाल में जिन्होंने देवों को आहुति समर्पित की है, वह होतागण अनुकूल होकर देवों की अर्चना करें । हम शारीरिक दृष्टि से सुदृढ़ होकर वीर सुसन्ततियों से युक्त हों ॥५,३.५॥

दैवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह मादयध्वम् ।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद्वृजिना द्वेष्या या
॥५,३.६॥

हे छह बड़ी दिव्य दिशाओ ! आप हमारे लिए विस्तृत स्थान प्रदान करें । हे सर्वदेवो ! आप हमें हर्षित करें। निस्तेजता, अपकीर्ति तथा द्वेष आदि पाप हमारे निकट न आने पाएँ ॥५,३.६॥

तिस्रो देवीर्महि नः शर्म यछत प्रजायै नस्तन्वे यच्च पुष्टम् ।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन्
॥५,३.७॥

हे तीनों (भारती, पृथ्वी और सरस्वती) देवियो ! आप हमारा बृहत् कल्याण करें और जो पोषक वस्तुएँ हैं, उसे हमारे शरीर और प्रजा के लिए प्रदान करें। हम सन्तानों और पशुओं से हीन न हों । हे राजन् सोम ! हम शत्रुओं के कारण दुःखी न हों ॥५,३.७॥

उरुव्यचा नो महिषः शर्म यछत्वस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षु ।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृडेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः
॥५,३.८॥

सर्वव्यापक, पूजनीय, अनेक यजमानों के द्वारा बुलायह जाने वाले, विभिन्न स्थानों में वास करने वाले इन्द्रदेव इस यज्ञ में पधारकर हमें सुख प्रदान करें । हे हरित अश्वों के स्वामिन् ! आप हमारी सन्ततियों को सुखी करें । हमारे प्रतिकूल न होकर हमें अनिष्टों से बचाएँ ॥५,३.८॥

धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सविताभिमातिषाहः ।
आदित्या रुद्रा अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात्॥५,३.९॥

सृष्टि के निर्माता एवं धारणकर्ता, जो सम्पूर्ण विश्व के अधिपति हैं, उन सर्वप्रेरक, पालनकर्ता और अहंकारी शत्रुओं के विजेता सवितादेवता, आदित्य, रुद्र,

अश्विनीकुमार आदि सभी प्रमुख देव इस यज्ञ का संरक्षण करें तथा यजमान को पापों से बचाएँ ॥५.३.९॥

यह नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामह एनान् ।
आदित्या रुद्रा उपरिस्पृशो नो उग्रं चेत्तारमधिराजमक्रत ॥५.३.१०॥

जो हमारे शत्रु हैं, वह पराभूत हों । हम उन्हें इन्द्राग्नि की सामर्थ्य से विनष्ट करते हैं। वसुगण, रुद्रगण और आदित्यगण यह सभी हमें ऊँचे पदों पर आसीन करके पराक्रमी, ज्ञानसम्पन्न तथा सबके अधिपति बनाएँ ॥५.३.१०॥

अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद्धनजिदश्वजिद्यः ।
इमं नो यज्ञं विहवे शृणोत्वस्माकमभूर्हर्यश्व मेदी ॥५.३.११॥

जो पृथ्वीं, धन तथा अश्वों को जीतने वाले और शत्रुओं का सामना करने वाले हैं, उन इन्द्रदेव को हम द्युलोक से बुलाते हैं, वह संग्राम में हमारे इस स्तोत्र को सुनें । हे हर्यश्व इन्द्रदेव ! आप हमारे स्नेही बनें ॥५.३.११॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त ४ – कुष्ठतक्मनाशन सूक्त

कुष्ठ औषधि का वर्णन

यो गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः ।
कुष्ठेहि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्न् इतः ॥५,४.१॥

हे व्याधिनिवारक कुष्ठ औषधे ! आप पर्वतों में उत्पन्न होने वाली तथा समस्त औषधियों में अत्यधिक शक्तिदायी हैं। आप कष्टदायी रोगों को विनष्ट करती हुई यहाँ पधारें ॥५,४.१॥

सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि ।
धनैरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम् ॥५,४.२॥

गरुड़ के उत्पत्ति स्थान हिमालय शिखर पर, उत्पन्न इस औषधि को, आरोग्य धनरूप सुनकर लोग वहाँ जाते हैं और व्याधि निवारक इस औषधि को प्राप्त करते हैं ॥५,४.२॥

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥५,४.३॥

यहाँ से तीसरे द्युलोक में जहाँ देवों के बैठने का स्थान' अश्वत्थ' है, वहाँ पर देवों ने अमृत का बखान करने वाले इस 'कुष्ठ'औषधि को प्राप्त किया ॥५,४.३॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥५,४.४॥

स्वर्गलोक में सोने के बन्धन वाली स्वर्णिम नौका चलती है । वहाँ पर देवों ने अमृत के पुष्प 'कुष्ठ'औषधि को प्राप्त किया था ॥५,४.४॥

हिरण्ययाः पन्थान आसन्न् अरित्राणि हिरण्यया ।
नावो हिरण्ययीरासन् याभिः कुष्ठं निरावहन् ॥५,४.५॥

जिससे (जिस माध्यम से) 'कुष्ठ' औषधि लायी गयीं थी, उसके मार्ग, उसकी बल्लियाँ तथा उसकी नौकाएँ सोने की थीं ॥५,४.५॥

इमं मे कुष्ठ पूरुषं तमा वह तं निष्कुरु ।
तमु मे अगदं कृधि ॥५,४.६॥

हे कुष्ठ औषधे ! आप हमारे इस पुरुष को उठाकर पूर्णतया रोगरहित करें और इसे आरोग्य प्रदान करें ॥५,४.६॥

देवेभ्यो अधि जातोऽसि सोमस्यासि सखा हितः ।
स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड ॥५,४.७॥

हे कुष्ठ औषधे ! आप देवताओं के द्वारा उत्पन्न हुई हैं। आप सोम औषधि की हितकारी सखा हैं। इसलिए आप हमारे

इस पुरुष के व्यान, प्राण और आँखों को सुख प्रदान करें ॥५,४.७॥

उदङ्जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम् ।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे ॥५,४.८॥

वह 'कुष्ठ' नाम वाली औषधि हिमालय के उत्तर में उत्पन्न हुई तथा पूर्व दिशा में मनुष्यों के समीप लायी गई । वहाँ पर उसके श्रेष्ठ नामों को लोगों ने विभाजन किया ॥५,४.८॥

उत्तमो नाम कुष्ठस्युत्तमो नाम ते पिता ।
यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं चारसं कृधि ॥५,४.९॥

हे कुष्ठ औषधे ! आपका और आपके पिता (उत्पादक हिमालय) दोनों का ही नाम उत्तम है । आप समस्त प्रकार के क्षय रोगों को दूर करें और कष्टदायी ज्वर को निर्वीर्य करें ॥५,४.९॥

शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वो रपः ।
कुष्ठस्तत्सर्वं निष्करद्दैवं समह वृष्ण्यम् ॥५,४.१०॥

सिर की व्याधि, आँखों की दुर्बलता और शारीरिक दोष, इन सब रोगों को 'कुष्ठ' औषधि ने दिव्य बल को प्राप्त करके दूर कर दिया ॥५,४.१०॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त ५- लाक्षा सूक्त

लाख औषधि का वर्णन

रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः ।
सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा ॥५,५.१॥

हे लाक्षा (लाख) ! चन्द्रमा की रश्मियों के द्वारा पोषित होने के कारण रात्रि आपकी माता हैं और वृष्टि द्वारा उत्पन्न होने के कारण आकाश आपके पिता हैं तथा आकाश में बादलों को लाने के कारण अर्यमा (सूर्य) आपके पितामह हैं। आपका नाम 'सिलाची' है और आप देवों की बहन हैं ॥५,५.१॥

यस्त्वा पिबति जीवति त्रायसे पुरुषं त्वम् ।
भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्चनी ॥५,५.२॥

जो आपका पान करते हैं, वह जीवित रहते हैं। आप मनुष्यों की सुरक्षा करने वाली हैं। आप समस्त लोगों का भरण करने वाली तथा आरोग्य प्रदान करने वाली हैं ॥५,५.२॥

वृक्षंवृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कन्यला ।
जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्परणी नाम वा असि ॥५,५.३॥

पुरुष की कामना करने वाली कन्या के समान आप प्रत्येक वृक्ष पर चढ़ती हैं। आप विजित होने वाली तथा खड़ी होने वाली हैं, इसलिए आपका नाम 'स्परणी' है ॥५,५.३॥

यद्दण्डेन यदिष्वा यद्वारुर्हरसा कृतम् ।
तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरुषम् ॥५,५.४॥

दण्ड से, बाण से अथवा रगड़ से जो घाव हो जाते हैं, उन सबकी, हे लाख औषधे ! आप उपायरूप हैं। अतः आप इस पुरुष को रोगरहित करें ॥५,५.४॥

भद्रात्प्लक्षान् निस्तिष्ठस्यश्वत्थात्खदिराद्धवात्।
भद्रान् न्यग्रोधात्पर्णात्सा न एह्यरुन्धति ॥५,५.५॥

हे घावों को भरने वाली औषधे ! आप कदम्ब, पाकड़, पीपल, धव, खैर, भद्र, न्यग्रोध तथा पर्ण से पैदा होती हैं, आप हमारे पास पधारें ॥५,५.५॥

हिरण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे ।
रुतं गछासि निष्कृते निष्कृतिर्नाम वा असि ॥५,५.६॥

हे स्वर्ण तथा सूर्य सदृश वर्णवाली सुभगे ! हे शरीर के लिए कल्याणकारी तथा रोगों को दूर करने वाली औषधे ! आप रोगों के पास (उसे दूर करने के लिए पहुँचती हैं, इसलिए आपका नाम 'निष्कृति' है ॥५,५.६॥

हिरण्यवर्णे सुभगे शुष्मे लोमशवक्षने ।
अपामसि स्वसा लाक्षे वातो हात्मा बभूव ते ॥५,५.७॥

हे स्वर्ण सदृश रंग वाली भाग्यशालिनि ! हे बलकारिणी तथा रोमों वाली लाक्षा औषधे ! आप जल की बहन हैं और वायु आपकी आत्मा है ॥५,५.७॥

सिलाची नाम कानीनोऽजबभ्रु पिता तव ।
अश्वो यमस्य यः श्यावस्तस्य हास्नास्युक्षिता ॥५,५.८॥

आपका नाम 'सिलाची' तथा 'कानीन' हैं और बकरियों के पालक वृक्षादि आपके पिता हैं। यम के जो पीले-काले रंग के घोड़े हैं, उनके रक्त से आपको सिंचित किया गया था ॥५,५.८॥

अश्वस्यास्नः संपतिता सा वृक्षामभि सिष्यदे ।
सरा पतत्रिणी भूत्वा सा न एह्यरुन्धति ॥५,५.९॥

हे घाव को भरने वाली औषधे ! आप अश्व-रक्त के समान हैं। आप वृक्षों को सिंचित करने वाली तथा सरकने वाली हैं। आप टपकने वाली या प्रवहमान होकर हमारे पास पधारें ॥५,५.९॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त ६ – ब्रह्मविद्या सूक्त

ब्रह्म, सीरी और अग्नि की स्तुति

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥५,६.१॥

सत्-चित्- सुखात्मक तथा जगत् का कारणभूत ब्रह्म, सृष्टि के पूर्व में ही उत्पन्न हुआ । पूर्व दिशा में उदित होने वाला जो सूर्यात्मक तेज 'वैन' है, वही सत् और असत् के उद्गम स्थान के ज्ञान को व्यक्त करने वाला है ॥५,६.१॥

अनाप्ता यह वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद्व एतत्पुरो दधे ॥५,६.२॥

हे मनुष्यो ! आपने अज्ञान की अवस्था में जिन कर्मो को सम्पन्न किया था, वह हमारी सन्तानों को यहाँ पर विनष्ट, न

करें, अत: उन सबको हम आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हैं ॥५,६.२॥

सहस्रधार एव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवे ॥५,६.३॥

सामर्थ्ययुक्त पवित्र सोम की स्तुति की जाती है । आदिपिता यह सोमदेव अपने व्रतों का निर्वाह करते हुए महान् अन्तरिक्ष को अपने तेजस् से आवृत कर देते हैं । ज्ञानी याजक उन्हें धारणशील जल में मिश्रित करते हैं ॥५,६.३॥

पर्यू षु प्र धन्वा वाजसातयह परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तदध्यर्णवेनेयसे सनिस्रसो नामासि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः ॥५,६.४॥

(हे सूर्यदेव !} अन्न या बलवर्द्धन के लिए आप शत्रुनिवारक होकर वृत्रों (अवरोधक आवरणों) को दूर करें । आप समुद्र (सागर या अन्तरिक्षा से शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं, अत: आपका नाम 'सनिस्रस' (पराक्रमी) है। तेरहवाँ माह (पुरुषोत्तम मास) इन इन्द्र (सूर्य) का आवास होता हैं ॥५,६.४॥

न्वेतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥५,६.५॥

निश्चितरूप से इस (पूर्वोक्त) क्रम के द्वारा ही इसने सिद्धि प्राप्त की है। आपके लिए यह हवि समर्पित है । हे तीक्ष्ण आयुध तथा तीक्ष्ण अस्त्र वाले सोम और रुद्र देवो ! इस युद्ध में आप हमें सुख प्रदान करें ॥५,६.५॥

अवैतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥५,६.६॥

इस विद्या के द्वारा ही इसने सिद्धि उपलब्ध की थी । आपके लिए यह हवि समर्पित है । हे तीक्ष्ण आयुध तथा अस्त्र वाले सोम और रुद्र देवो ! इस युद्ध में आप हमें सुख प्रदान करें ॥५,६.६॥

अपैतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥५,६.७॥

इस प्रक्रिया के द्वारा ही इसने सिद्धि प्राप्त की थी। आपके लिए यह हवि समर्पित है । हे तीक्ष्ण आयुध तथा अस्त्र वाले सोम और रुद्र देवो ! इस युद्ध में आप हमें सुख प्रदान करें ॥५,६.७॥

मुमुक्तमस्मान् दुरितादवद्याज्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम् ॥५,६.८॥

हे सोम और रुद्र देवो ! आप हमें पाप से छुड़ाएँ और यज्ञ को ग्रहण करते हुए हमें अमरत्व प्रदान करें ॥५,६.८॥

चक्षुषो हेते मनसो हेते ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते ।
मेन्या मेनिरस्यमेनयस्ते सन्तु यहऽस्मामभ्यघायन्ति
॥५,६.९॥

हे आँख, मन तथा मन्त्र सम्बन्धी आयुध ! आप हथियारों के भी हथियार हैं । जो हमको विनष्ट करने की कामना करते हैं, वह शस्त्ररहित हो जाएँ ॥५,६.९॥

योऽस्मांश्चक्षुषा मनसा चित्त्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात्।
त्वं तान् अग्ने मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा ॥५,६.१०॥

हिंसक पाप कर्मो की कामना वाले जो पापी लोग आँख, मन, चित्त तथा संकल्प से हमें क्षीण करना चाहते हैं, उनको हे अग्निदेव ! आप अपने शस्त्र से शस्त्रहीन करें । यह हवि आपके लिए समर्पित है ॥५,६.१०॥

इन्द्रस्य गृहोऽसि ।

तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन् मेऽस्ति तेन ॥५,६.११॥

हे अग्निदेव ! आप इन्द्र के घर हैं। आप सर्वगामी, सर्व आत्मा, सर्व शरीर तथा सर्वपुरुष हैं। अपने समस्त साथियों सहित हम आपकी शरण में हैं और आप में प्रविष्ट होते हैं ॥५,६.११॥

इन्द्रस्य शर्मासि ।
तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन् मेऽस्ति तेन ॥५,६.१२॥

हे अग्निदेव ! आप इन्द्रदेव के सुख-स्थल हैं । आप सर्वगामी, सर्व आत्मा, सर्वशरीर तथा सर्वपुरुषरूप हैं। अपने समस्त साथियों सहित हम आपकी शरण में हैं और आप में प्रविष्ट होते हैं ॥५,६.१२॥

इन्द्रस्य वर्मासि ।

तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन् मेऽस्ति तेन ॥५,६.१३॥

हे अग्निदेव ! आप इन्द्रदेव के कवच हैं । आप सर्वगामी, सर्व आत्मा, सर्वशरीर तथा सर्बपुरुष हैं। अपने समस्त साथियों सहित, हम आपकी शरण में आते हैं और आप में प्रविष्ट होते हैं ॥५,६.१३॥

इन्द्रस्य वरूथमसि ।
तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन् मेऽस्ति तेन ॥५,६.१४॥

हे अग्ने ! आप इन्द्रदेव के ढाल स्वरूप हैं । आप सर्वगामी, सर्व आत्मा, सर्वशरीर तथा सर्वपुरुष हैं। अपने समस्त साथियों सहित हम आपकी शरण में आते हैं और आप में प्रविष्ट होते हैं ॥५,६.१४॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त ७ – अरातिनाशन सूक्त

अराति की स्तुति

आ नो भर मा परि ष्ठा अराते मा नो रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम्।
नमो वीर्साया असमृद्धयह नमो अस्त्वरातयह ॥५,७.१॥

हे अराते ! आप दिव्य सम्पदा से हमें पूर्ण करें और हमें घेरकर न बैठे। हमारे द्वारा लाई हुई दक्षिणा को आप रोककर न रखें । ईष्र्यायुक्त असमृद्धि तथा अदान की अधिष्ठात्री देवी के लिए हमारा नमन है ॥५,७.१॥

यमराते पुरोधत्से पुरुषं परिरापिणम् ।
नमस्ते तस्मै कृण्मो मा वनिं व्यथयीर्मम ॥५,७.२॥

हे अराते ! आप जिस बकवादी (अभावों का बखान करने वाले) मनुष्य को अपने सम्मुख रखती हैं, उसको हम दूर से ही नमन करते हैं, परन्तु आप हमारी इस भावना को पीड़ित न करना ॥५,७.२॥

प्र णो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं च कल्पताम् ।
अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातयह ॥५,७.३॥

देवों (सद्गुणों की दैवी सम्पदा के प्रति की हुई हमारी भक्ति दिन-रात बढ़ती रहे । हम 'अराति' के आश्रय में जाते (सादा जीवन स्वीकार करते हैं और उन्हें नमस्कार करते हैं ॥५,७.३॥

सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे ।
वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु ॥५,७.४॥

देव- आवाहित यज्ञों में, देवों को हर्षित करने वाली मधुर वाणी का हम उच्चारण करते हैं और 'अनुमति', 'सरस्वती'

तथा 'भग' देवों के शरणगत होकर हम उनका आवाहन करते हैं ॥५,७.४॥

यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा ।
श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रुणा ॥५,७.५॥

मन से जुड़ी सरस्वती (वाणीं) से हम जिस वस्तु (दिव्य सम्पदा) की याचना करते हैं, सोमदेव द्वारा प्रदान की गयी श्रद्धा उसे प्राप्त करे ॥५,७.५॥

मा वनिं मा वाचं नो वीर्सीरुभाविन्द्राग्नी आ भरतां नो वसूनि ।
सर्वे नो अद्य दित्सन्तोऽरातिं प्रति हर्यत ॥५,७.६॥

हे अराते ! आप हमारी वाणी तथा भक्ति को अवरुद्ध न करें । दोनों -इन्द्र और अग्नि देव हमें चारों ओर से ऐश्वर्य प्राप्त कराएँ । समस्त देव हमें देने की अभिलाषा करें और हमारे शत्रुओं के विपरीत चलें ॥५,७.६॥

परोऽपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि ।
वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते ॥५,७.७॥

हे असमृद्धे (दरिद्रता) ! हम आपको क्लेश तथा पीड़ा देने वालों के रूप में जानते हैं, आप हमसे परे चली जाएँ। हे अराते ! हम आपकी विघटनकारी शक्ति को दूर करते हैं ॥५,७.७॥

उत नग्ना बोभुवती स्वप्नया सचसे जनम् ।
अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरुषस्य च ॥५,७.८॥

हे अराते ! आप मनुष्यों को आलस्य से संयुक्त करके नग्न (लज्जास्पद) स्थिति प्रदान करती हैं और उनके संकल्पों को धनरहित करके असफल करती हैं ॥५,७.८॥

या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे ।
तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकरं नमः ॥५,७.९॥

जो अत्यन्त विशाल लेकर समस्त दिशाओं में व्याप्त हो गई है, उस स्वर्णिम रोमों वाली (लाभप्रद दिखने वाली) असमृद्धि को हम नमस्कार करते हैं ॥५,७.९॥

हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्मही ।
तस्यै हिरण्यद्रापयहऽरात्या अकरं नमः ॥५,७.१०॥

जो स्वर्णिम रंग वाली 'हिरण्यकशिपु' (राक्षस के वशीभूत या स्वर्णिम आवरण वाली) मही (पृथ्वी के समान या महान्) रमणीयता को नष्ट करने वाली है, उस अदानशीलता को हम नमस्कार करते हैं ॥५,७.१०॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त ८- शत्रुनाशन सूक्त

अग्नि देव से यज्ञ में सभी देवों को लाने का आग्रह इंद्र तथा अन्य देवों से यज्ञ में आने का निमंत्रण देकर इंद्र से शत्रुओं को मारने का आग्रह

वैकङ्कतेनेध्मेन देवेभ्य आज्यं वह ।
अग्ने तामिह मादय सर्व आ यन्तु मे हवम् ॥५.८.१॥

हे अग्निदेव ! आप बलशाली औषधि गुणयुक्त वृक्ष के ईंधन से देवों के लिए घृत पहुँचाएँ और उन्हें हर्षित करें। हमारे आवाहन पर वह सब हमारे यज्ञ में पधारें ॥५.८.१॥

इन्द्रा याहि मे हवमिदं करिष्यामि तच्छृणु ।
इम ऐन्द्रा अतिसरा आकूतिं सं नमन्तु मे ।
तेभिः शकेम वीर्यं जातवेदस्तनूवशिन् ॥५.८.२॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे यज्ञ में पधारें और हमारे द्वारा की हुई स्तुति को सुनें । आपकी तरफ अग्रगामी याजक हमारे संकल्प के अनुकूल रहें । हे उत्पन्न हुए लोगों को जानने वाले तथा शरीर को वश में रखने वाले इन्द्रदेव ! उन याजकों के द्वारा हम वीर्य प्राप्त कर सकें ॥५,८.२॥

यदसावमुतो देवा अदेवः संश्चिकीर्षति ।
मा तस्याग्निर्हव्यं वाक्षीद्धवं देवा अस्य मोप गुर्ममैव हवमेतन ॥५,८.३॥

हे देवो ! आपकी भक्ति न करने वाले जो मनुष्य घात करना चाहते हैं, उनकी हवि को अग्निदेव न पहुँचाएँ और देवगण उनके यज्ञ में न जाकर हमारे ही यज्ञ में पधारें ॥५,८.३॥

अति धावतातिसरा इन्द्रस्य वचसा हत ।
अविं वृक इव मथ्नीत स वो जीवन् मा मोचि प्राणमस्यापि नह्यत ॥५,८.४॥

हे योद्धाओ ! आप इन्द्रदेव के (अभय) वचनों से बढ़े और शत्रुओं का संहार करें । जिस प्रकार भेड़िया, भेड़ों को मारता है, उसी प्रकार आप शत्रुओं को मथ डालें । आप से वह जीवित न बचे, आप उसके प्राण को भी बींध डालें ॥५,८.४॥

यममी पुरोदधिरे ब्रह्माणमपभूतयह ।
इन्द्र स ते अधस्पदं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥५,८.५॥

हे इन्द्रदेव ! हमारी अवनति के लिए इन शत्रुओं ने जिस ब्राह्मण को अपना पुरोहित बनाया है, वह आपके पैरों के नीचे हो । हम उसे मृत्यु की ओर फेंकते हैं ॥५,८.५॥

यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥५,८.६॥

हे देव ! 'तनुनपान' और 'परिपाण' क्रिया करते समय यदि शत्रुओं ने पहले ही मन्त्रमय कवच बना लिए हों, तो उस समय उनके द्वारा कहे हुए वचनों को आप असफल करें ॥५,८.६॥

यान् असावतिसरांश्चकार कृणवच्च यान् ।
त्वं तान् इन्द्र वृत्रहन् प्रतीचः पुनरा कृधि यथामुं तृणहां जनम् ॥५,८.७॥

हे वृत्र-संहारक इन्द्रदेव ! हमारे शत्रुओं ने जिन योद्धाओं को अग्रगामी बनाया था और अभी जिनको बना रहे हैं, उनको आप पुन: पीछे करें । जिससे हम शत्रुओं के सैन्य दल को विनष्ट कर सकें ॥५,८.७॥

यथेन्द्र उद्वाचनं लब्ध्वा चक्रे अधस्पदम् ।
कृण्वेऽहमधरान् तथा अमूञ्छश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥५,८.८॥

जिस प्रकार इन्द्रदेव ने उत्तम स्तुति वचनों को प्राप्त करके, शत्रुओं को अपने पैरों तले रौंद डाला था, उसी प्रकार हम भी शत्रुओं को सदा के लिए तिरस्कृत करते हैं ॥५,८.८॥

अत्रैनान् इन्द्र वृत्रहन्न् उग्रो मर्मणि विध्य ।
अत्रैवैनान् अभि तिष्ठेन्द्र मेद्यहं तव ।
अनु त्वेन्द्रा रभामहे स्याम सुमतौ तव ॥५,८.९॥

हे वृत्र संहारक इन्द्रदेव ! आप इस संग्राम में प्रचण्ड बनकर शत्रुओं के मर्म स्थल में घाव करें । हे देव ! हम आपसे प्रेम करने वाले हैं, अतः आप इन शत्रुओं पर चढ़ाई करें । हे इन्द्रदेव ! हम आपके अनुकूल रहकर अपना कार्य प्रारम्भ करते हैं, इसलिए आप हमारे ऊपर अनुग्रह बुद्धि रखें ॥५,८.९॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त ९ – आत्मा सूक्त

पृथ्वी, स्वर्ग और आकाश से प्रार्थना तथा पत्थर से बने घर की स्तुति

दिवे स्वाहा ॥५.९.१॥

द्युलोक के अधिष्ठाता देवता के लिए यह हवि समर्पित है ॥५.९.१॥

पृथिव्यै स्वाहा ॥५.९.२॥

पृथ्वी के अधिष्ठाता देवता के लिए यह हवि समर्पित है ॥५.९.२॥

अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥५.९.३॥

अन्तरिक्ष के अधिष्ठाता देवता के लिए यह हवि समर्पित हैं ॥५,९.३॥

अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥५,९.४॥

(हृदय के) अन्तरिक्ष में विद्यमान देवता के लिए यह हवि समर्पित है ॥५,९.४॥

दिवे स्वाहा ॥५,९.५॥

स्वर्गलोक (गमन) के लिए यह हवि समर्पित है ॥५,९.५॥

पृथिव्यै स्वाहा ॥५,९.६॥

पृथ्वी (पर हर्षपूर्वक निवास करने के लिए यह हवि समर्पित है ॥५,९.६॥

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् ।
अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां
गोपीथाय ॥५,९.७॥

सूर्यदेव हमारे नेत्र हैं, वायुदेव प्राण हैं, अन्तरिक्षदेव आत्मा और पृथ्वी शरीर है। यह हम अमर नाम वाले हैं, द्यावापृथिवी द्वारा संरक्षित होने के लिए हम अपनी आत्मा को उनके आश्रित करते हैं ॥५,९.७॥

उदायुरुद्बलमुत्कृतमुत्कृत्यामुन् मनीषामुदिन्द्रियम् ।
आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ गोपा मे स्तं गोपायतं मा ।
आत्मसदौ मे स्तं मा मा हिंसिष्टम् ॥५,९.८॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप हमारे आयु, बल, कर्म, कृत्या, बुद्धि तथा इन्द्रिय को उत्कृष्ट बनाएँ। हे आयुष्य बढ़ाने वाले तथा आयु की रक्षा करने वाले स्वधावान् द्यावा-पृथिवी आप दोनों हमारे संरक्षक हैं । आप हममें विद्यमान रहकर हमारी सुरक्षा करें, हमें विनष्ट न होने दें ॥५,९.८॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त १० – आत्मरक्षा सूक्त

चंद्रमा, वायु, सूर्य, अंतरिक्ष और पृथ्वी की स्तुति

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्राच्या दिशोऽघायुरभिदासात्।
एतत्स ऋछात्॥५,१०.१॥

हे अश्मवर्म (पत्थर का कवच) ! आप हमारे हैं। हमें मारने की इच्छा वाले जो मनुष्य पूर्व दिशा से हमें विनष्ट करना चाहते हैं, वह स्वयं नष्ट हो जाएँ ॥५,१०.१॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा दक्षिणाया दिशोऽघायुरभिदासात्।
एतत्स ऋछात्॥५,१०.२॥

हे अश्मवर्म !आप हमारे हैं । जो मनुष्य दक्षिण दिशा से हमें विनष्ट करना चाहते हैं, वह स्वयं नष्ट हो जाएँ ॥५,१०.२॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्रतीच्या दिशोऽघायुरभिदासात्।
एतत्स ऋछात्॥५,१०.३॥

हे अश्मवर्म ! आप हमारे हैं । जो मनुष्य पश्चिम दिशा से हमें विनष्ट करना चाहते हैं, वह स्वयं नष्ट हो जाएँ ॥५,१०.३॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मोदीच्या दिशोऽघायुरभिदासात्।
एतत्स ऋछात्॥५,१०.४॥

हे अश्मवर्म ! आप हमारे हैं। जो मनुष्य उत्तर दिशा से हमें विनष्ट करना चाहते हैं, वह स्वयं नष्ट हो जाएँ ॥५,१०.४॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा ध्रुवाया दिशोऽघायुरभिदासात्।
एतत्स ऋछात्॥५,१०.५॥

हे अश्मवर्म ! आप हमारे हैं। जो पापी ध्रुव दिशा से हमें विनष्ट करना चाहते हैं, वह स्वयं नष्ट हो जाएँ ॥५,१०.५॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मोर्ध्वाया दिशोऽघायुरभिदासात्।
एतत्स ऋछात्॥५,१०.६॥

हे अश्मवर्म ! आप हमारे हैं। जो मनुष्य ऊर्ध्व दिशा से हमें विनष्ट करना चाहते हैं, वह स्वयं नष्ट हो जाएँ ॥५,१०.६॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात्।
एतत्स ऋछात्॥५,१०.७॥

हे अश्मवर्म ! आप हमारे हैं। हमें मारने की इच्छा वाले जो पापी अन्तर्दिशाओं से हमें विनष्ट करना चाहते हैं, वह स्वयं ही नष्ट हो जाएँ ॥५,१०.७॥

बृहता मन उप ह्वयह मातरिश्वना प्राणापानौ ।
सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम् ।
सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा ॥५,१०.८॥

बृहत् चन्द्रदेव से हम मन का आवाहन करते हैं, वायुदेव से प्राण-अपान, सूर्यदेव से चक्षु, अन्तरिक्ष से श्रोत्र, धरती से शरीर तथा मनोयोगपूर्वक (प्रदान करने वाली) सरस्वती से हम वाणी की याचना करते हैं ॥५,१०.८॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त ११ – संपत्कर्म सूक्त

वरुण देव की स्तुति

कथं महे असुरायाब्रवीरिह कथं पित्रे हरयह त्वेषनृम्णः ।
पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान् पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः
॥५,११.१॥

हे अत्यधिक बलवान् तथा ऐश्वर्यवान् वरुणदेव पालनकर्ता तथा प्राणदाता सूर्यदेव से आपने क्या-क्या कहा था ? हे बारम्बार धन प्रदान करने वाले देव ! आप सूर्यदेव को (जलरूप) दक्षिणा प्रदान करते हैं और मन से हमारी चिकित्सा करते हैं ॥५,११.१॥

न कामेन पुनर्मघो भवामि सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे ।
केन नु त्वमथर्वन् काव्येन केन जातेनासि जातवेदाः
॥५,११.२॥

हम इच्छा मात्र से ही पुन: – पुनः ऐश्वर्यवान् नहीं बनते हैं, लेकिन सुख के लिए सूर्यदेव से स्तुति करने पर इस सुखपूर्ण अवस्था को प्राप्त करते हैं । हे अथर्ववेदीय ऋत्विज् ! आप किस कुशलता द्वारा जातवेदा अग्निदेव (के समान ओजस्वी) हो गए हैं ॥५,११.२॥

सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः ।
न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये
॥५,११.३॥

यह सही है कि मैं गम्भीर हूँ और वैदिक (उपचारों) के माध्यम से 'काव्य' कहलाता हूँ । जिस व्रत को मैं धारण करता हूँ, उस व्रत को मेरी महिमा के कारण कोई आर्य और दास तोड़ नहीं सकता ॥५,११.३॥

न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन् ।
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन् नु त्वज्जनो मायी बिभाय
॥५,११.४॥

हे स्वधावान् वरुणदेव ! आपके सिवा दूसरा कोई कवि नहीं है और बुद्धि के कारण दूसरा कोई धैर्यवान् नहीं है । आप समस्त प्राणियों के ज्ञाता हैं, इसीलिए वह कपटी मनुष्य आपसे भयभीत होते हैं ॥५,११.४॥

त्वं ह्यङ्ग वरुण स्वधावन् विश्वा वेत्थ जनिम सुप्रणीते ।
किं रजस एना परो अन्यदस्त्येना किं परेणावरममुर ॥५,११.५॥

हे स्वधावान् तथा नीतिवान् वरुणदेव ! आप प्राणियों के सम्पूर्ण जन्मों के ज्ञाता हैं । हे ज्ञानी वरुणदेव ! इस तेजस्वी प्रकृति से परे (ऊपर) क्या है और इस श्रेष्ठ से अवर (नीचे) क्या है? ॥५,११.५॥

एकं रजस एना परो अन्यदस्त्येना पर एकेन दुर्णशं चिदर्वाक्।
तत्ते विद्वान् वरुण प्र ब्रवीम्यधोवचसः पणयो भवन्तु नीचैर्दासा उप सर्पन्तु भूमिम् ॥५,११.६॥

इस रजोगुण युक्त (प्रकृति) से परे दूसरा एक (सतोगुण) है और उस सतोगुण से भी परे एक दुर्णश' अविनश्वर ब्रह्म' है । हे वरुणदेव ! आपकी महिमा को जानने वाले, हम आपसे कहते हैं कि हमारे सम्मुख कुत्सित व्यवहार करने वाले लोग अधोमुखी हों और हीनभाव वाले लोग भूमि पर नीचे होकर चलें ॥५,११.६॥

त्वं ह्यङ्ग वरुण ब्रवीषि पुनर्मघेष्ववद्यानि भूरि ।
मो षु पणींरभ्येतावतो भून् मा त्वा वोचन्न् अराधसं जनासः ॥५,११.७॥

हे सेही वरुणदेव ! प्राप्त होने वाले धन के अवसरों के प्रति आप बार-बार निन्दनीय वचन कहते हैं। इन प्रार्थना (आग्रह) करने वालों के साथ आप इतने उदासीन न हों, ताकि उनकी हानि भी न हो और वह आपको धनहीन भी मानने लगें ॥५,११.७॥

मा मा वोचन्न् अराधसं जनासः पुनस्ते पृश्निं जरितर्ददामि ।

स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीभिरन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ॥५.११.८॥

हे स्तोताओ ! लोग हमें ऐश्वर्यहीन न कहें, हम आपको अनुदानस्वरूप गौएँ (वाणी-इन्द्रियादि) पुन: प्रदान करते हैं। मनुष्य की समस्त अन्तर्दिशाओं में विद्यमान वाक् शक्ति से आप हमारे सम्पूर्ण स्तोत्र को पढ़े ॥५.११.८॥

आ ते स्तोत्राण्युद्यतानि यन्त्वन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ।
देहि नु मे यन् मे अदत्तो असि युज्यो मे सप्तपदः सखासि ॥५.११.९॥

हे वरुणदेव ! मनुष्यों से युक्त समस्त दिशाओं में आपके स्तोत्र संव्याप्त हों । आप जो कुछ हमें देने में सक्षम हैं, उसको हमें प्रदान करें । आप हमारे अनुरूप 'सप्तपदा' मित्र हैं ॥५.११.९॥

समा नौ बन्धुर्वरुण समा जा वेदाहं तद्यन् नावेषा समा जा ।

ददामि तद्यत्ते अदत्तो अस्मि युज्यस्ते सप्तपदः सखास्मि ॥५,११.१०॥

हे वरुणदेव ! हम दोनों समान बन्धु हैं और हमारा जन्म भी समान है; इस बात को हम जानते हैं । जो आपको नहीं प्रदान किया गया है, उन सबको हम प्रदान करते हैं। हम आपके योग्य सप्तपदा मित्र हैं ॥५,११.१०॥

देवो देवाय गृणते वयोधा विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः ।
अजीजनो हि वरुण स्वधावन् अथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् ।
तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं सखा नो असि परमं च बन्धुः ॥५,११.११॥

(हे देव !) आप स्तुति करने पर देवों के लिए अन्न या आयुष्य प्रदाता देव हैं तथा विप्रों के लिए श्रेष्ठ मेधा सम्पन्न विप्र (विज्ञान) हैं । हे स्वधावान् वरुणदेव ! देवों के बन्धु और हमारे पितारूप अथर्ववेत्ताओं को आपने उत्पन्न किया है । अत: आप हमें उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करें। आप हमारे श्रेष्ठ बन्धु तथा मित्र हैं ॥५,११.११॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त १२ – ऋतयज्ञ सूक्त

अग्नि की स्तुति

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः
॥५,१२.१॥

प्राणिमात्र के हितैषी हे मित्र अग्ने ! आप महान् गुण सम्पन्न होकर प्रज्वलित हों, कुशल याजकों द्वारा निर्धारित यज्ञ-मण्डप में देवगणों को आहूत करें तथा यजन करें । आप श्रेष्ठ चेतनायुक्त, विद्वान् तथा देवगणों के दूत हैं ॥५,१२.१॥

तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः
॥५,१२.२॥

शरीर के रक्षक और श्रेष्ठ वाणी वाले हे अग्निदेव ! आप सत्यरूप यज्ञ के मार्गों को वाक् माधुर्य से सुसंगत करते हुए हवियों को ग्रहण करें । विचारपूर्वक ज्ञान और यज्ञ देवगणों के लिए ग्रहण कर उन तक पहुँचाएँ ॥५,१२.२॥

आजुह्वान ईड्यो बन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान् ॥५,१२.३॥

देवताओं को आहूत करने वाले हे अग्निदेव ! आप प्रार्थना करने योग्य वन्दनीय तथा वसुओं के समान प्रेम करने वाले हैं। आप देवताओं के होतारूप में यहाँ पधार कर उनके लिए यज्ञ करें ॥५,१२.३॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितयह स्योनम् ॥५,१२.४॥

दिन के प्रारम्भकाल में भूमि या यज्ञभूमि को ढकने वाली यह कुशाएँ बहुत ही उत्तम हैं। यह देवताओं तथा अदिति के निमित्त सुखपूर्वक आसीन होने के योग्य हैं । यह यज्ञवेदी को ढकने के लिए फैलाई जाती हैं ॥५,१२.४॥

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः । देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥५,१२.५॥

जैसे पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पति का विकास करने वाली होती हैं, वैसे ही देवत्व सम्पन्न महती द्वार' देवियाँ रिक्त स्थान वाली, सबको आने-जाने के लिए मार्ग देने वाली तथा देवगणों को सुगमता से प्राप्त होने वाली हों ॥५,१२.५॥

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ । दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥५,१२.६॥

उषा और रात्रि देवियाँ मनुष्यों के लिए विभिन्न प्रकार के सुख प्रकट करें। वह यज्ञस्थल पर आकर प्रतिष्ठित हों; क्योंकि वह यज्ञ भाग की अधिकारिणी (स्वामिनी) हैं। वह दोनों दिव्यलोकवासिनी, अतिगुणवती, श्रेष्ठआभूषणादि से शोभायुक्त, उज्ज्वल, तेजस्वीस्वरूप वाली तथा सौन्दर्य को धारण करने वाली हैं ॥५,१२.६॥

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता
॥५,१२.७॥

दिव्य गुणों से युक्त होता, अग्निदेव और आदित्यगण सर्वश्रेष्ठ वेदमन्त्रों के ज्ञाता तथा मनुष्यों के लिए यज्ञ की रचना करने वाले हैं। वह देवपूजन के निमित्त यज्ञीय अनुष्ठानों के प्रेरक, कर्मकुशल, स्तुतिकर्ता तथा पूर्व दिशा के प्रकाश को भली प्रकार प्रकट करने वाले हैं ॥५,१२.७॥

आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वतीः स्वपसः सदन्ताम् ॥५,१२.८॥

देवी भारती का हमारे यज्ञ में शीघ्रता से आगमन हो। इस यज्ञ की वार्ता को स्मरण करके देवी इला' मनुष्यों के समान यहाँ पदार्पण करें तथा देवी सरस्वती भी शीघ्र ही यहाँ पधारें । सत्कर्मशीला यह तीनों देवियाँ इस यज्ञ में आकर सुखकारी आसन पर प्रतिष्ठित हों ॥५,१२.८॥

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥५,१२.९॥

हे होताओ ! द्यावा-पृथिवी (प्राणियों को जन्म देने वाली हैं। उन्हें त्वष्टादेव ने सुशोभित किया है। आप ज्ञानवान्, श्रेष्ठ कामनायुक्त तथा यज्ञशील हैं, अतएव आज इस यज्ञ में उन त्वष्टादेव की यथोचित अर्चना करें ॥५,१२.९॥

उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन
॥५,१२.१०॥

हे यूप(यज्ञ के स्तम्भ) ! आप स्वयं ही अपनी सामर्थ्य से देवों के निमित्त अन्नादि और अन्य यजनीय सामग्री श्रेष्ठ रीति से लाकर यथासमय प्रस्तुत करें । वनस्पतिदेव, शमितादेव और अग्निदेव मधुर घृतादि के साथ यजनीय हविष्यान्न का सेवन करें ॥५,१२.१०॥

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रशिष्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः
॥५,१२.११॥

प्रदीप्त होते ही अग्निदेव ने यज्ञीय भावना को प्रकट किया और देवताओं के अग्रणी दूत बने। इस यज्ञ के प्रमुख स्थानों में होता की भावना के अनुरूप वेदमन्त्रों का उच्चारण हो । स्वाहा के साथ यज्ञाग्नि में समर्पित किए गए हविष्यान्न को देवगण ग्रहण करें ॥५,१२.११॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त १३ – सर्पविषनाशन सूक्त

सर्पविषनाशन वर्णन

ददिर्हि मह्यं वरुणो दिवः कविर्वचोभिरुग्रैर्नि रिणामि ते विषम् ।
खातमखातमुत सक्तमग्रभमिरेव धन्वन् नि जजास ते विषम् ॥५,१३.१॥

द्युलोक के देवता वरुणदेव ने हमें उपदेश दिया है, उनके प्रचण्ड वचनों (मंत्रों) से हम आपके (विषधर) विष को दूर करते हैं। जो विष मांस में घुस गया है, जो नहीं घुसा है अथवा जो ऊपर ही चिपका हुआ हैं, उस सब विष को हम ग्रहण करते हैं। जिस प्रकार रेत में जल नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार आपके विष को पूर्णत: नष्ट करते हैं ॥५,१३.१॥

यत्ते अपोदकं विषं तत्त एतास्वग्रभम् ।

गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसमुतावमं भियसा नेशदादु ते ॥५,१३.२॥

आपके जल शोषक विष को हमने इन (नाड़ियों) के अन्दर ही पकड़ लिया है। आपके उत्तम, मध्यम और अधम विष – रस को हम ग्रहण करते हैं, वह हमारे (उपचार) भय से विनष्ट हो जाएँ ॥५,१३.२॥

वृषा मे रवो नभसा न तन्यतुरुग्रेण ते वचसा बाध आदु ते । अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमस इव ज्योतिरुदेतु सूर्यः ॥५,१३.३॥

हमारे शब्द (मन्त्र) वर्षणशील बादल के सदृश शब्द एवं शक्ति वाले हैं। ऐसे प्रचण्ड वचनों के द्वारा हम आप (विषधर) को बाँधते हैं। मनुष्यों के द्वारा हमने आपके विष को रोक लिया है । जिस प्रकार ज्योति देने वाला सूर्य अंधकार के बीच उदित होता है, उसी प्रकार यह पुरुष उदय को प्राप्त हो ॥५,१३.३॥

चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम् ।
अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम् ॥५,१३.४॥

हे सर्प ! हम अपने नेत्रबल से तेरे नेत्रबल को नष्ट करते हैं और विष से विष को नष्ट करते हैं। हे सर्प ! तुम मर जाओ, जीवित न रहो तुम्हारी विष तुम्हारे अन्दर ही लौट जाए ॥५,१३.४॥

कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्र आ मे शृणुतासिता अलीकाः ।
मा मे सख्युः स्तामानमपि ष्ठाताश्रावयन्तो नि विषे रमध्वम् ॥५,१३.५॥

है जंगल में घूमने वाले, धब्बों वाले, घास में निवास करने वाले, भूरे रंग वाले कृष्ण तथा निन्दनीय सर्पो ! तुम हमारा कथन सुनो । तुम हमारे मित्र के घर के पास निवास न करो। हमारी इस बात को दूसरे सर्पों को सुनाते हुए अपने ही विश्व में रमते रहो ॥५,१३.५॥

असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च ।
सात्रासाहस्याहं मन्योरव ज्यामिव धन्वनो वि मुञ्चामि रथामिव ॥५,१३.६॥

गीले स्थान में निवास करने वाले, काले और भूरे रंगवाले, जल से दूर रहने वाले तथा सबको परास्त करने वाले क्रोधी सर्पों के विष को हम वैसे ही उतारते हैं, जैसे धनुष से डोरी और रथों के बन्धन को उतारते हैं ॥५,१३.६॥

आलिगी च विलिगी च पिता च मता च ।
विद्म वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ ॥५,१३.७॥

हे सर्पो !तुम्हारे माता और पिता चिपकने वाले तथा न चिपकने वाले हैं। हम तुम्हारे भाइयों को सब प्रकार से जानते हैं ।तुम निर्वीर्य होकर क्या कर सकते हो ? ॥५,१३.७॥

उरुगूलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या ।
प्रतङ्कं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ॥५,१३.८॥

विशालकाय 'गूला' वृक्ष से पैदा हुई, उसकी पुत्री सर्पिणी, काली सर्पिणी की दासी है । दाँतों से क्रोध प्रकट करने वाली इन सर्पिणियों का दुःखदायक विष प्रभावहीन हो जाए ॥५,१३.८॥

कर्णा श्चावित्तदब्रवीद्विरेरवचरन्तिका ।
याः काश्चेमाः खनित्रिमास्तासामरसतमं विषम् ॥५,१३.९॥

पर्वतों के समीप विचरने वाली और कान वाली 'साहों' ने कहा कि जो धरती को खोदकर निवास करने वाली सर्पिणियाँ हैं, उनका विष प्रभावहीन हो जाए ॥५,१३.९॥

ताबुवं न ताबुवं न घेत्त्वमसि ताबुवम् ।
ताबुवेनारसं विषम् ॥५,१३.१०॥

आप 'ताबुव' नहीं हैं। नि:सन्देह आप 'ताबुव' नहीं हैं; क्योंकि 'ताबुव' के द्वारा विष प्रभावहीन हो जाता है ॥५,१३.१०॥

तस्तुवं न तस्तुवं न घेत्त्वमसि तस्तुवम् ।
तस्तुवेनारसं विषम् ॥५,१३.११॥

आप तस्तुव' नहीं हैं। नि:संदेह आप 'तस्तुव' नहीं हैं, क्योंकि 'तस्तुव' के द्वारा विष प्रभावहीन हो जाता है॥५,१३.११॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त १४- कृत्यापरिहरण सूक्त

औषधि से प्रार्थना

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत्सूकरस्त्वाखनन् नसा ।
दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि ॥५,१४.१॥

(हे औषधे !) सुपर्ण (गरुड़ या सूर्य) ने आपको प्राप्त किया था और सूकर (आदिबाराह) ने अपनी नाक से आपको खोदा था । हे औषधे ! कृत्या प्रयोग द्वारा हमें मारने वालों को आप विनष्ट करें ॥५,१४.१॥

अव जहि यातुधानान् अव कृत्याकृतं जहि ।
अथो यो अस्मान् दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे ॥५,१४.२॥

हे औषधे ! आप दु:ख देने वाले यातुधानों को विनष्ट करें और कृत्याकारियों को मारें । जो हमें मारने की कामना करते हैं, उनको भी आप विनष्ट करें ॥५,१४.२॥

रिश्यस्येव परीशासं परिकृत्य परि त्वचः ।
कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत ॥५,१४.३॥

हे देवो ! हिंसा करने वालों के अस्त्र को उसकी त्वचा के ऊपर घाव करके पृथक् करें । जिस प्रकार मनुष्य सोने को प्रेमपूर्वक ग्रहण करता है, उसी प्रकार वह कृत्याकारी उस कृत्या को मोहग्रस्त होकर ग्रहण करे ॥५,१४.३॥

पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय ।
समक्षमस्मा आ धेहि यथा कृत्याकृतं हनत्॥५,१४.४॥

है औषधे ! आप कृत्या को कृत्याकारियों के पास हाथ पकड़कर पुनः ले जाएँ और उन कृत्याकारियों को कृत्या

के सम्मुख रख दें, जिससे वह कृत्याकारियों को विनष्ट कर डाले ॥५,१४.४॥

कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥५,१४.५॥

कृत्याकारी को ही कृत्या प्राप्त हो और अभिशाप देने वाले को अभिशाप प्राप्त हो । सुखदायी रथ की गति से वह कृत्या कृत्याकारी के पास पुनः पहुँच जाए ॥५,१४.५॥

यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकार पाप्मने ।
तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या ॥५,१४.६॥

चाहे स्त्री अथवा पुरुष ने आपको पापपूर्ण कृत्य करने के लिए प्रेरित किया हो, हम अश्व पर रस्सी पटकने (कशाघात) के समान कृत्या को कृत्याकारी पर ही पटकते हैं ॥५,१४.६॥

यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता ।
तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ॥५,१४.७॥

हे कृत्ये ! यदि आप देवों द्वारा अथवा मनुष्यों द्वारा प्रेरित की गयी हैं, तो भी हम इन्द्र के सखा आपको पुन: लौटाते हैं ॥५,१४.७॥

अग्ने पृतनाषाट्पृतनाः सहस्व ।
पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ॥५,१४.८॥

हे युद्ध जीतने वाले अग्ने ! आप कृत्या की सेनाओं को परास्त करें । इस प्रतिहरण कर्म के द्वारा हम कृत्या को कृत्या करने वालों के पास पुन: लौटाते हैं ॥५,१४.८॥

कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिज्जहि ।
न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि ॥५,१४.९॥

हे संहारक साधनों से युक्त कृत्ये ! आप उस कृत्याकारी को बेधकर विनष्ट कर डालें । जिसने आपको प्रेरित नहीं

किया है, उसको मारने के लिए हम आपको उत्तेजित नहीं करते हैं ॥५,१४.९॥

पुत्र इव पितरं गछ स्वज इवाभिष्ठितो दश ।
बन्धमिवावक्रामी गछ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः ॥५,१४.१०॥

हे कृत्ये ! पिता के पास पुत्र की तरह आप प्रयोगकर्ता के समीप जाएँ। जिस प्रकार लिपटने वाला सर्प दबने पर काट लेता है, उसी प्रकार आप उसे इसे । जिस प्रकार (बीच से टूटने पर) बन्धन पुन: अपने ही अंग में लगता है, उसी प्रकार हे कृत्ये ! आप उस कृत्याकारी के पास पुन: जाएँ ॥५,१४.१०॥

उदेणीव वारण्यभिस्कन्दं मृगीव ।
कृत्या कर्तारमृछतु ॥५,१४.११॥

जिस प्रकार हथिनी, मृगी तथा एणी (कृष्ण) मृगी (आक्रमणकारी पर) झपटती है, उसी प्रकार वह कृत्या कृत्याकारी पर झपटे ॥५,१४.११॥

इष्वा ऋजीयः पततु द्यावापृथिवी तं प्रति ।
सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥५,१४.१२॥

हे द्यावा-पृथिवि ! वह कृत्या, कृत्याकारी पर बाण के समान सीधी गिरे और मृग के समान उस कृत्याकारी को पुन: पकड़ ले ॥५,१४.१२॥

अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम् ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥५,१४.१३॥

वह कृत्या अग्नि के सदृश कृत्याकारी से प्रतिकूल आचरण करती हुई उसके पास पहुंचे और जिस प्रकार पानी किनारों को काटता हुआ बढ़ता है, उसी प्रकार वह कृत्या, कृत्याकारी के अनुकूल होकर उसके पास पहुँचे । वह कृत्या सुखकारी रथ के समान कृत्याकारी पर पुनः चली जाए ॥५,१४.१३॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त १५ – रोगोपशमन सूक्त

मधुला औषधि का वर्णन

एका च मे दश च मेऽपवक्तार औषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥५,१५.१॥

हे ऋत (यज्ञ) से उत्पन्न एवं ऋतमयी औषधे ! हमारी निन्दा करने वाले एक हों अथवा दस हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥५,१५.१॥

द्वे च मे विंशतिश्च मेऽपवक्तार औषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥५,१५.२॥

हे ऋत (यज्ञ या सत्य) से उत्पन्न एवं ऋतमयी औषधे ! हमारी निन्दा करने वाले दो हों अथवा बीस हों, आप मधुरता

उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥५,१५.२॥

तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मेऽपवक्तार औषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥५,१५.३॥

हे यज्ञार्थ उत्पन्न ऋत (सत्य या जल) युक्त औषधे ! हमारी बुराई करने वाले तीन हों अथवा तीस हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥५,१५.३॥

चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवक्तार औषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥५,१५.४॥

हे यज्ञार्थ उत्पन्न ऋतमयी औषधे ! हमारी निन्दा करने वाले चार हों अथवा चालीस हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥५,१५.४॥

पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपवक्तार औषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥५,१५.५॥

हे यज्ञार्थ उत्पन्न ऋतमयी औषधे ! हमारी बुराई करने वाले पाँच हों अथवा पचास हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥५,१५.५॥

षट्च मे षष्टिश्च मेऽपवक्तार औषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥५,१५.६॥

हे यज्ञ के लिए उत्पन्न ऋतमयी औषधे ! हमारी बुराई करने वाले छह हों अथवा साठ हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥५,१५.६॥

सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपवक्तार औषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥५,१५.७॥

हे यज्ञार्थ उत्पन्न ऋतमयी औषधे ! हमारी निन्दा करने वाले सात हों अथवा सत्तर हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥५,१५.७॥

अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपवक्तार औषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥५,१५.८॥

हे यज्ञार्थ उत्पन्न ऋतमयी औषधे ! हमारी निन्दा करने वाले आठ हों अथवा अस्सी हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥५,१५.८॥

नव च मे नवतिश्च मेऽपवक्तार औषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥५,१५.९॥

हे यज्ञार्थ उत्पन्न ऋतमयी औषधे ! हमारी निन्दा करने वाले नौ हों अथवा नब्बे हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥५,१५.९॥

दश च मे शतं च मेऽपवक्तार औषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥५,१५.१०॥

हे यज्ञार्थ उत्पन्न ऋतमयी औषधे ! हमारी निन्दा करने वाले दस हों या सौ हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥५,१५.१०॥

शतं च मे सहस्रं चापवक्तार औषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥५,१५.११॥

हे यज्ञार्थ उत्पन्न ऋतमयी औषधे ! हमारी बुराई करने वाले सौ हों अथवा हजार हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥५,१५.११॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त १६ – वृषरोगशमन सूक्त

लवण को संतानोत्पत्ति के लिए उत्साहित करना

यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥५,१६.१॥

(हे मनुष्य !) यदि आप एक वृष (शक्ति की एक इकाई) से सम्पन्न हैं, तो आप और सृजन करें, अन्यथा आप 'रसरहित (सामर्थ्यहीन) माने जायेंगे ॥५,१६.१॥

यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥५,१६.२॥

(हे मनुष्य !) यदि आप दो वृष (शक्ति) से सम्पन्न हैं, तो आप सृजन करें, अन्यथा आप अयोग्य समझे जायेंगे ॥५,१६.२॥

यदि त्रिवृसोऽसि सृजारसोऽसि ॥५,१६.३॥

(हे मनुष्य !) यदि आप तीन वृष (शक्ति) से सम्पन्न हैं, तो सृजन करें, अन्यथा आप सामर्थ्यहीन माने जायेंगे ॥५,१६.३॥

यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥५,१६.४॥

(हे मनुष्य !) यदि आप चार वृष (शक्ति) से सम्पन्न हैं, तो सृजन करें, अन्यथा आप रसहीन समझे जायेंगे ॥५,१६.४॥

यदि पञ्चवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥५,१६.५॥

(हे मनुष्य !) यदि आप पाँच वृष (शक्ति) से सम्पन्न हैं, तो सृजन करें, अन्यथा आप अयोग्य माने जायेंगे ॥५,१६.५॥

यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥५,१६.६॥

(हे मनुष्य !) यदि आप छह वृष (शक्ति) से युक्त हैं, तो सृजन करें, अन्यथा आप अयोग्य माने जायेंगे ॥५,१६.६॥

यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥५,१६.७॥

(हे मनुष्य !) यदि आप सात वृष (शक्ति) से सम्पन्न हैं, तो आप सृजन करें, अन्यथा आप अयोग्य माने जायेंगे॥५,१६.७॥

यद्यष्टवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥५,१६.८॥

(हे मनुष्य !) यदि आप आठ वृष (शक्ति) से सम्पन्न हैं, तो सृजन करें, अन्यथा आप अयोग्य माने जायेंगे ॥५,१६.८॥

यदि नववृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥५,१६.९॥

(हे मनुष्य !) यदि आप नौ वृष (शक्ति) से सम्पन्न हैं, तो सृजन करें, अन्यथा आप अयोग्य माने जायेंगे ॥५,१६.९॥

यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥५,१६.१०॥

(हे मनुष्य !) यदि आप दस वृष (शक्ति) से सम्पन्न हैं, तो सृजन करें, अन्यथा आप अयोग्य माने जायेंगे ॥५,१६.१०॥

यद्येकादशोऽसि सोऽपोदकोऽसि ॥५,१६.११॥

(हे मनुष्य !) यदि आप(उपर्युक्त दस वृष शक्तियों से रहित) ग्यारहवें हैं, तो उदकरहित या उससे परे हैं ॥५,१६.११॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त १७ – ब्रह्मजाया सूक्त

ब्रह्मजाया का वर्णन

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतस्य
॥५,१७.१॥

उन्होंने पहले ब्रह्मकिल्बिष (ब्रह्म विकार- प्रकृति अथवा रचना) को कहा- व्यक्त किया । उग्र तप से पहले दिव्य आपः (मूल सक्रिय तत्त्व) तथा सोम प्रकट हुए। दूर स्थित (सूर्य) जल तथा वायु तेजस् से युक्त हुए ॥५,१७.१॥

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायछदह्रणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय
॥५,१७.२॥

संकोच का परित्याग करके राजा सोम ने पावन चरित्रवती वह ब्रह्मजाया, बृहस्पति (ज्ञानी या ब्रह्मनिष्ठ पुरुष) को प्रदान की। मित्रावरुण देवों ने इस कार्य का अनुमोदन किया। तत्पश्चात् यज्ञ-सम्पादक अग्निदेव हाथ से पकड़कर उसे आगे लेकर आयह ॥५,१७.२॥

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायहति चेदवोचत्।
न दूताय प्रहेया तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥५,१७.३॥

हे बृहस्पतिदेव ! इसे हाथ से स्पर्श करना उचित ही है; क्योंकि यह ब्रह्मजाया' है, ऐसा सभी देवों ने कहा। इन्हें तलाशने के लिए जो दूत भेजे गए थे, उनके प्रति इनका अनासक्ति भाव रहा (जुहू ब्रह्मनिष्ठों के अलावा अन्यों का साथ नहीं देती), जैसे शक्तिशाली नरेश का राज्य सुरक्षित रहता है, वैसे ही इनकी चरित्रनिष्ठा अडिग रही ॥५,१७.३॥

यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुछुनां ग्राममवपद्यमानाम् ।

सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान् ॥५,१७.४॥

ग्राम (समूह विशेष) पर गिरती हुई इस विपत्ति, अविद्या को (जानकार लोग) विरुद्ध प्रभाववाली 'तारका कहते हैं । जहाँ यह उल्काओं की तरह (विनाशक शक्तियुक्त) गतिशील 'तारका' गिरी हो (अविद्या फैल गई हो), यह ब्रह्मजाया (ब्रह्मविद्या) उस राष्ट्र में विशेष ढंग से उलट-पुलट करके (अविद्याजनित परिपाटियों को पुन: उलटकर सीधा करके) रख देती है ॥५,१७.४॥

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद्बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥५,१७.५॥

हे देवगण ! सर्वव्यापी बृहस्पतिदेव विरक्त होकर ब्रह्मचर्य नियम का निर्वाह करते हुए सर्वत्र विचरण करते हैं। वह देवताओं के साथ एकात्म होकर उनके अंग-अवयव रूप हैं । जिस प्रकार उन्होंने सर्वप्रथम सोम के हाथों 'जुहू' को

प्राप्त किया, वैसे ही इस समय भी बृहस्पतिदेव ने इसे प्राप्त किया ॥५,१७.५॥

देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसा यह निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्
॥५,१७.६॥

जो सप्तर्षिगण तपश्चर्या में संलग्न थे, उनके द्वारा तथा चिरप्राचीन देवों ने इसके विषय में घोषणा की है कि यह ब्राह्मण द्वारा ग्रहण की गई कन्या अति सामर्थ्यवती हैं । परम व्योम में यह दुर्लभ शक्ति धारण करती है ॥५,१७.६॥

यह गर्भा अवपद्यन्ते जगद्यच्चापलुप्यते ।
वीरा यह तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥५,१७.७॥

जो गर्भपात होते हैं (अवाञ्छनीय का विकास क्रम क्षीण होता है) । जगत् में जो उथल-पुथल होती है तथा (लोग

प्राय:) परस्पर लड़ते-भिड़ते हैं, उन सबको यह ब्रह्मजाया (ब्रह्मविद्या) नष्ट कर देती है ॥५,१७.७॥

उत यत्पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः ।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत्स एव पतिरेकधा ॥५,१७.८॥

इस स्त्री(ब्राह्मी शक्ति) के पहले दस अब्राह्मण पति(बाह्मण-संस्कारहीन रक्षक अथवा दस प्राण-दस दिक्पाल आदि) होते हैं, किन्तु जब ब्रह्मचेतना-सम्पन्न व्यक्ति (अथवा साधक) उसको ग्रहण करता है, तो वहीं उसका एक मात्र स्वामी होता है ॥५,१७.८॥

ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः ।
तत्सूर्यः प्रब्रुवन् एति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥५,१७.९॥

मनुष्यों के पाँचों वर्गों (समाज के सभी विभागों अथवा पाँचों तत्त्वों) से सूर्यदेव यह कहते हुए विचरण करते हैं कि ब्राह्मण

ही इस स्त्री का पति हैं । राजा (क्षत्रिय) तथा वैश्य (व्यापारी) इसके पति नहीं हो सकते ॥५,१७.९॥

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः ।
राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥५,१७.१०॥

देवताओं और मनुष्यों ने बार-बार यह ब्रह्मजाया (ब्रह्मनिष्ठों को) प्रदान की है। सत्य स्वरूप राजाओं ने भी दुबारा शपथपूर्वक (संकल्पपूर्वक) इस सत्य निष्ठा को उन्हें प्रदान किया ॥५,१७.१०॥

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वोरुगायमुपासते ॥५,१७.११॥

ब्राह्मी विद्या को पुन: लाकर देवों ने बृहस्पतिदेव को दोष मुक्त किया। तत्पश्चात् पृथ्वी के सर्वोत्तम अन्न (उत्पादों) का विभाजन करके सभी सुखपूर्वक यज्ञीय उपासना करने लगे ॥५,१७.११॥

नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा शयह ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥५,१७.१२॥

जिस राष्ट्र में इस ब्रह्मजाया (ब्रह्म विद्या) को जड़तापूर्वक प्रतिबन्ध में डाला जाता है, उस राष्ट्र में सैकड़ों कल्याणों को धारण करने वाली 'जाया' (विद्या) भी सुख की शय्या प्राप्त नहीं कर पाती (फलित होने से वंचित रह जाती) है ॥५,१७.१२॥

न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥५,१७.१३॥

जिस राष्ट्र में ब्रह्मविद्या को जड़तापूर्वक प्रतिबन्धित किया जाता है, उस राष्ट्र के घरों में बड़े कान वाले(बहुश्रुत) तथा विशाल सिरवाले (मेधावी) पुत्र उत्पन्न नहीं होते ॥५,१७.१३॥

नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः ।

यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥५,१७.१४॥

जिस राष्ट्र में ब्रह्मविद्या को अज्ञानपूर्वक प्रतिबन्धित किया जाता है, उस राष्ट्र के वीर गले में स्वर्णाभूषण धारण करके (गौरवपूर्वक) लड़कियों अथवा सत्परम्पराओं के सामने नहीं आते ॥५,१७.१४॥

नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥५,१७.१५॥

जिस राष्ट्र में ब्रह्मजाया को दुराग्रहपूर्वक प्रतिबन्धित किया जाता है, उस राष्ट्र के श्यामकर्ण (श्रेष्ठ) सफेद घोड़े धुरे में नियोजित होकर भी प्रशंसित नहीं होते ॥५,१७.१५॥

नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बिसम् ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥५,१७.१६॥

जिस राष्ट्र में ब्रह्मजाया को जड़तापूर्वक प्रतिबन्धित किया जाता है, उस क्षेत्र में कमल के तालाब नहीं होते और न हीं कमल के बीज उत्पन्न होते हैं ॥५,१७.१६॥

नास्मै पृश्निं वि दुहन्ति यहऽस्या दोहमुपासते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥५,१७.१७॥

जिस राष्ट्र में ब्रह्मजाया को जड़तापूर्वक प्रतिबन्धित किया जाता है, उस राष्ट्र में दूध दुहने के लिए बैठने वाले मनुष्य इस गौ (गाय या पृथ्वी) से थोड़ा भी (निर्वाह योग्य) दूध (पोषण) नहीं निकाल पाते ॥५,१७.१७॥

नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान्त्सहते धुरम् ।
विजानिर्यत्र ब्रह्मणो रात्रिं वसति पापया ॥५,१७.१८॥

जिस राष्ट्र में ब्राह्मण विशिष्ट ज्ञानरहित (या स्त्रीरहित) होकर रात्रि (अज्ञान) में पाप बुद्धि से निवास करते हैं, उस राष्ट्र में न तो कल्याण करने वाली धेनु (गौएँ या धारक क्षमता होती हैं और न भार वहन करने में समर्थ (राष्ट्र की गाड़ी खींचने वाले) वृषभ उत्पन्न होते हैं ॥५,१७.१८॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त १८ – ब्रह्मगवी सूक्त

ब्राह्मण की गाय का वर्णन

नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे ।
मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम् ॥५,१८.१॥

हे राजन् ! देवों ने इस गौ का भक्षण करने के लिए आपको नहीं प्रदान किया है । हे राजन्य ! आप ब्राह्मण की नष्ट न करने योग्य गौ को नष्ट न करें ॥५,१८.१॥

अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः ।
स ब्राह्मणस्य गामद्यादद्य जीवानि मा श्वः ॥५,१८.२॥

इन्द्रिय-विद्रोही, आत्म-पराजित तथा पापी राजा यदि ब्राह्मण की गौओं का भक्षण करे, तो वह आज ही जीवित रहे, कल नहीं ॥५,१८.२॥

आविष्टिताघविषा पृदाकूरिव चर्मणा ।
सा ब्राह्मणस्य राजन्य तृष्टैषा गौरनाद्या ॥५,१८.३॥

हे राजन्य ! यह ब्राह्मण की गाय (निष्ठा) तिरस्कार करने के योग्य नहीं होती; क्योंकि वह चमड़े से आवृत फुफकारने वाली साँपिन के सदृश भयंकर विषैली होती है ॥५,१८.३॥

निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चोऽग्निरिवारब्धो वि दुनोति सर्वम् ।
यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स विषस्य पिबति तैमातस्य ॥५,१८.४॥

जो क्षत्रिय, ब्राह्मण को अन्न की तरह समझते हैं, वह साँप के विष का पान करते हैं और अपनी 'क्षात्र-वृत्ति' का पतन करते हैं तथा वर्चस् को क्षीण करते हैं।वे क्रोधित अग्नि के समान अपना सब कुछ नष्ट कर डालते हैं ॥५,१८.४॥

य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीयुर्धनकामो न चित्तात्।

सं तस्येन्द्रो हृदयहऽग्निमिन्धे उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम् ॥५,१८.५॥

धन- अभिलाषी जो मनुष्य ब्राह्मण को कोमल समझकर बिना विचारे उसको विनष्ट करना चाहते हैं, वह देवों की ही हिंसा करने वाले होते हैं। ऐसे पापी के हृदय में इन्द्रदेव अग्नि प्रज्वलित करते हैं, ऐसे विचरते हुए मनुष्य से द्यावा-पृथिवी विद्वेष करती हैं ॥५,१८.५॥

न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिव ।
सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः ॥५,१८.६॥

जिस प्रकार अपने प्रिय शरीर को कोई विनष्ट नहीं करना चाहता, उसी प्रकार अग्नि स्वरूप ब्राह्मण को विनष्ट नहीं करना चाहिए। सोम देवता इसके सम्बन्धी हैं और इन्द्रदेव इसके शाप के पालक अर्थात् पूर्ण करने वाले हैं॥ ॥५,१८.६॥

शतापाष्ठां नि गिरति तां न शक्नोति निःखिदम् ।
अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः स्वाद्वद्मीति मन्यते ॥५,१८.७॥

जो मलीन पुरुष ऐसा समझते हैं कि हम ब्राह्मण के अन्न को स्वादपूर्वक खा सकते हैं। उनके स्वत्व का अपहरण कर सकते हैं), वह सैकड़ों विपत्तियों को प्राप्त होते हैं । वह उसको मिटाना चाहकर भी नहीं मिटा सकते ॥५,१८.७॥

जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ्नाडीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः ।
तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून् हृद्बलैर्धनुर्भिर्देवजूतैः ॥५,१८.८॥

ब्राह्मण की जिह्वा ही धनुष की डोरी होती है, उसकी वाणी ही कुल्मल (धनुष को दण्ड) होती है । तप से क्षीण हुए उसके दाँत ही बाण होते हैं । देवों द्वारा प्रेरित आत्मबल के धनुषों से वह देव शत्रुओं को बांधता है ॥५,१८.८॥

तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां न सा मृषा।

अनुहाय तपसा मन्युना चोत दुरादव भिन्दन्त्येनम् ॥५,१८.९॥

तप और क्रोध के साथ पीछा करके, तीक्ष्ण बाणों तथा अस्त्रों से युक्त ब्राह्मण, जिन बाणों को छोड़ते हैं, वह निरर्थक नहीं जाते। वह बाण शत्रु को दूर से ही बीध डालते हैं ॥५,१८.९॥

यह सहस्रमराजन्न् आसन् दशशता उत ।
ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन् ॥५,१८.१०॥

'वीतहव्य' वंश के (अथवा देवताओं का अंश-हव्य हड़पने वाले) जो हजारों राजा पृथ्वी पर शासन करते थे, वह ब्राह्मण को गाय (उनके शाप) को खाकर नष्ट हो गए थे ॥५,१८.१०॥

गौरेव तान् हन्यमाना वैतहव्यामवातिरत्।
यह केसरप्राबन्धायाश्वरमाजामपेचिरन् ॥५,१८.११॥

जो बालों की रस्सी से बंधी हुई अन्तिम अजा को भी हड़प कर जाते हैं, उन 'वैतव्यों को पीटती हुई गौओं ने तहस-नहस कर दिया ॥५,१८.११॥

एकशतं ता जनता या भूमिर्व्यधूनुत ।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् ॥५,१८.१२॥

सैकड़ों ऐसे 'जन' जिन्होंने अपने शौर्य से) पृथ्वी को हिला दिया था, वह ब्राह्मण की सन्तानों को मारने के कारण बिना सम्भावना के ही पराभूत हुए ॥५,१८.१२॥

देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान् ।
यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम् ॥५,१८.१३॥

वह ब्राह्मण देवहिंसक 'विष' से जीर्ण होकर (अस्थिमात्र) काया में विद्यमान रहकर, मनुष्यों के बीच में विचरण करता है । जो मनुष्य देवों के बन्धुरूप ब्राह्मण की हत्या करता है, वह पितृयान द्वारा प्राप्त होने वाले लोकको नहीं प्राप्त होता ॥५,१८.१३॥

अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायाद उच्यते ।
हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद्वेधसो विदुः ॥५,१८.१४॥

अग्निदेव ही हमारे पथ-प्रदर्शक हैं, सोमदेव हमारे सम्बन्धी हैं तथा इन्द्रदेव शापित मनुष्य के विनाशकर्ता हैं। इस बात को ज्ञानी लोग जानते हैं ॥५,१८.१४॥

इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकूरिव गोपते ।
सा ब्राह्मणस्येषुर्घोरा तया विध्यति पीयतः ॥५,१८.१५॥

हे राजन् ! हे पृथ्वीपते ! ब्राह्मण के बाण (शाप आदि) फुफकारती सर्पिणी के सदृश भयंकर होते हैं । वह उन बाणों से हिंसकों को बींधता है ॥५,१८.१५॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त १९ – ब्रह्मगवी सूक्त

ब्राह्मणों के साथ बुरे व्यवहार के फल का वर्णन

अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन् ।
भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्याः पराभवन् ॥५,१९.१॥

सृञ्जय (इस नाम वाले या जयशील) अत्यधिक बढ़ गए थे, लेकिन उन्होंने भृगुवंशियों को विनष्ट कर डाला और वह वीतहव्य (हव्य हड़पने वाले) हो गए ।अत: उनका पराभव हुआ और वह स्वर्गलोक का स्पर्श नगर सके ॥५,१९.१॥

यह बृहत्सामानमाङ्गिरसमार्पयन् ब्राह्मणं जनाः ।
पेत्वस्तेषामुभयादमविस्तोकान्यावयत्॥५,१९.२॥

जो लोग बृहत्साम वाले (वेदाभ्यासीं) आंगिरस (तेजस्वी) ब्राह्मणों को सताते रहे, उनकी सन्तानों को हिंसा करने वालों (पशुओं या काल) ने दोनों जबड़ों में पीस डाला ॥५,१९.२॥

यह ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन् यह वास्मिञ्छुल्कमीषिरे ।
अस्रस्ते मध्ये कुल्यायाः केशान् खादन्त आसते ॥५,१९.३॥

जो लोग ब्राह्मणों को अपमानित करते हैं अथवा जो उनसे बलपूर्वक कर वसूल करते हैं, वह खून की नदियों में बालों को ख़ाते हुए पड़े रहते हैं ॥५,१९.३॥

ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत्साभि विजङ्गहे ।
तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ॥५,१९.४॥

जिस कारण (अनीति से) राष्ट्र में ब्राह्मण की संतप्त की गयी "गौ" तड़फड़ाती रहती हैं, उसी (अनीति के) कारण राष्ट्र

का तेज मर जाता है और उस राष्ट्र में शौर्यवान् वीर भी नहीं उत्पन्न होते ॥५,१९.४॥

क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं पिशितमस्यते ।
क्षीरं यदस्याः पीयते तद्वै पितृषु किल्बिषम् ॥५,१९.५॥

इसको पीड़ित करना क्रूरता का कार्य है । इस (अपहृत गौं) का मांस तृषा उत्पन्न करने के कारण फेंकने योग्य होता है और उसका दूध पियह जाने पर पितरों में पाप उत्पन्न करने वाला होता है । ॥५,१९.५॥

उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति ।
परा तत्सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥५,१९.६॥

जो राजा अपने आप को उग्र मानकर बाह्मण को पीड़ित करता है और जिस राष्ट्र में ब्राह्मण दुःखी होता है, वह राष्ट्र अत्यन्त पतित हो जाता है ॥५,१९.६॥

अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः ।
द्व्यास्या द्विजिह्वा भूत्वा सा राष्ट्रमव धूनुते ब्रह्मज्यस्य ॥५.१९.७॥

ब्राह्मण पर डाली गयी विपत्ति, उसे पीड़ित करने वाले राजा के राज्य को, आठ पैरवाली, चार आँख वाली, चार कान वाली, चार ठोड़ी वाली, दो मुख वाली तथा दो जिह्वा वाली (कई गुनी घातक) होकर, हिला देती है॥ ॥५.१९.७॥

तद्वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम् ।
ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद्राष्ट्रं हन्ति दुछुना ॥५.१९.८॥

जिस राष्ट्र में ब्राह्मण को हिंसा होती है, उस राष्ट्र को आपत्ति विनष्ट कर देती है। जिस प्रकार जल टूटी हुई नौका को डुबा देता है, उसी प्रकार पाप उस राष्ट्र को डुबा देता है ॥५.१९.८॥

तं वृक्षा अप सेधन्ति छायां नो मोप गा इति ।

यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद मन्यते ॥५,१९.९॥

हे नारद ! जो लोग ब्राह्मण की सम्पत्ति हरण करके अपना मानते हैं, उनको वृक्ष भी अपने से दूर कर देना चाहते हैं ॥५,१९.९॥

विषमेतद्देवकृतं राजा वरुणोऽब्रवीत्।
न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा रास्त्रे जागार कश्चन ॥५,१९.१०॥

राजा वरुण कहते हैं कि ब्राह्मण की सम्पत्ति हरण करना देवों द्वारा निर्मित विष के समान है । ब्राह्मण का धन हड़प करके राष्ट्र में कोई जागता (जीवित) नहीं रहता ॥५,१९.१०॥

नवैव ता नवतयो या भूमिर्व्यधूनुत ।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् ॥५,१९.११॥

ऐसे निन्यानबे (बहुसंख्यक) उदाहरण हैं, जिन्हें भूमि ही नष्ट कर देती हैं। वह ब्राह्मणों की प्रजा (उनके आश्रितों) की हिंसा करके पराजित हो जाते हैं ॥५,१९.११॥

यां मृतायानुबध्नन्ति कूद्यं पदयोपनीम् ।
तद्वै ब्रह्मज्य ते देवा उपस्तरणमब्रुवन् ॥५,१९.१२॥

है ब्राह्मणों को पीड़ित करने वालो ! देवों ने कहा है, पैरों के चिह्नों को हटाने वाली जिस काँटों की झाड़ू को मृतक के साथ बाँधते हैं, उसको देवों ने आपके लिए बिछौना के रूप में कहा है ॥५,१९.१२॥

अश्रूणि कृपमानस्य यानि जीतस्य वावृतुः ।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥५,१९.१३॥

हे ब्राह्मणों को पीड़ित करने वालो ! दुर्बल तथा जीते गए ब्राह्मणों के जो आँसू बहते हैं, देवों ने आपके लिए वही जल का भाग निश्चित किया है ॥५,१९.१३॥

यहन मृतं स्नपयन्ति श्मश्रूणि यहनोन्दते ।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥५,१९.१४॥

हे ब्राह्मणों को पीड़ित करने वालो ! जिस जल से मृत व्यक्ति को स्नान कराते हैं तथा जिससे पूँछ के बाल गीला करते हैं, देवों ने आपके लिए उतने जल का भाग ही निश्चित किया है ॥५,१९.१४॥

न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति ।
नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम् ॥५,१९.१५॥

सूर्य और वरुण द्वारा प्रेरित वृष्टि ब्राह्मण-पीड़क के ऊपर नहीं गिरती और उसको सभा सहमति नहीं प्रदान करती, वह अपने मित्रों को अपने वशीभूत भी नहीं कर सकता ॥५,१९.१५॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त २० – शत्रुसेनात्रासन सूक्त

दुंदुभि की महिमा का वर्णन

उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन् वानस्पत्यः संभृत उसृइयाभिः ।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंह इव जेष्यन्न् अभि तंस्तनीहि ॥५,२०.१॥

हे दुन्दुभि वाद्य ! आप बलिष्ठ प्राणियों के समान व्यवहार करके ऊँचा स्वर करने वाले हैं। आप वनस्पतियों से विनिर्मित तथा गो- चर्मों से आवृत हैं। आप उद्घोष करते हुए शत्रुओं का दमन करें तथा सिंह के सदृश विजय की अभिलाषा करते हुए गर्जना करें ॥५,२०.१॥

सिंह इवास्तानीद्द्रुवयो विबद्धोऽभिक्रन्दन्न् ऋषभो वासितामिव ।

वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः ॥५.२०.२॥

हे दुन्दुभि वाद्य ! आपकी अवस्था वृक्ष के समान है । आप विशेष प्रकार से बँधकर सिंह के समान तथा गौ को चाहने वाले साँड़ के समान गर्जना करने वाले हैं। आप शक्तिशाली हैं, इसलिए आपके शत्रु निर्वीर्य हो जाते हैं । आपका बल इन्द्र के समान होकर रिषुओं का विनाश करने वाला है ॥५.२०.२॥

वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्न् अभि रुव संधनाजित्।
शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः ॥५.२०.३॥

जिस प्रकार गौओं के समूह में गो-अभिलाषी वृषभ सहसा पहचान लिया जाता है, उसी प्रकार ऐश्वर्य को विजित करने की इच्छा वाले आप गर्जना करें । आष शत्रुओं के हृदय को पीड़ा से बींध डालें, जिससे वह अपने गाँवों को छोड़कर गिरते हुए भाग जाएँ ॥५.२०.३॥

संजयन् पृतना ऊर्ध्वमायुर्गृह्या गृह्णानो बहुधा वि चक्ष्व ।
दैवीं वाचं दुन्दुभ आ गुरस्व वेधाः शत्रूणामुप भरस्व वेदः
॥५,२०.४॥

हे दुन्दुभि वाद्य ! आप ऊँची ध्वनि करते हुए युद्ध को जीतें । उनकी ग्रहणीय वस्तुओं को ग्रहण करते हुए, उनका निरीक्षण करें। आप दिव्य वाणी का उद्घोष करें और विधाता बनकर शत्रुओं के ऐश्वर्यों को लाकर हमें प्रदान करें ॥५,२०.४॥

दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा ।
नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम्
॥५,२०.५॥

दुन्दुभि वाद्य की स्पष्ट निकली हुई ध्वनि को सुनकर, उसकी गर्जना से जागी हुई शत्रु – स्त्रियाँ संग्राम में वीरों (पति) के मरने के कारण भयभीत होकर, अपने पुत्रों का हाथ पकड़कर भाग जाएँ ॥५,२०.५॥

पूर्वो दुन्दुभे प्र वदासि वाचं भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः ।
अमित्रसेनामभिजञ्जभानो द्युमद्वद दुन्दुभे सूनृतावत्॥५,२०.६॥

हे दुन्दुभि वाद्य ! आप सबसे पहले ध्वनि करते हैं। इसलिए आप शत्रु - सेनाओं को विनष्ट करते हुए पृथ्वी की पीठ पर प्रकाशित होते हुए मधुर ध्वनि करें ॥५,२०.६॥

अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक्ते ध्वनयो यन्तु शीभम् ।
अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः श्लोककृन् मित्रतूर्याय स्वर्धी ॥५,२०.७॥

इस द्यावा-पृथिवी के बीच में आपको उद्घोष हो। आपकी ध्वनियाँ शीघ्र ही चारों दिशाओं में फैलें । आप प्रशंसक शब्दों से समृद्ध होकर, ऊपर चढ़ते हुए, मित्रों में वेग उत्पन्न करने के लिए ध्वनि करें तथा गर्जना करें ॥५,२०.७॥

धीभिः कृतः प्र वदाति वाचमुद्धर्षय सत्वनामायुधानि ।
इन्द्रमेदी सत्वनो नि ह्वयस्व मित्रैरमित्रामव जङ्घनीहि
॥५,२०.८॥

बुद्धिपूर्वक विनिर्मित नगाड़ा (दुन्दुभि) ध्वनि करता हैं, हे दुन्दुभि वाद्य ! आप पराक्रमी मनुष्यों के हथियारों को ऊँचा उठाकर उन्हें हर्षित करें । इन्द्रदेव आपके साथ प्रेम करते हैं। आप वीरों को बुलाएँ और हमारे मित्रों द्वारा शत्रुओं का वध कराएँ ॥५,२०.८॥

संक्रन्दनः प्रवदो धृष्णुषेणः प्रवेदकृद्बहुधा ग्रामघोषी ।
श्रियो वन्वनो वयुनानि विद्वान् कीर्तिं बहुभ्यो वि हर द्विराजे
॥५,२०.९॥

हे दुन्दुभि वाद्य ! आप कड़ककर ध्वनि करते हैं और सेनाओं को विजयी तथा साहसी बनाते हैं । आप गाँवों को गुञ्जरित करने वाले, उनका कल्याण करने वाले तथा विद्वान् मनुष्यों को जानने वाले हैं। आप दो राजाओं के युद्धों में अनेक योद्धाओं को कीर्ति प्रदान करें ॥५,२०.९॥

श्रेयःकेतो वसुजित्सहीयान्त्संग्रामजित्संशितो ब्रह्मणासि ।
अंशून् इव ग्रावाधिषवणे अद्रिर्गव्यन् दुन्दुभेऽधि नृत्य वेदः
॥५.२०.१०॥

हे दुन्दुभि वाद्य ! आप कल्याण प्रदान करने वाले, ऐश्वर्य जीतने वाले, बल वाले तथा युद्ध को विजित करने वाले हैं। आप बाह्मणों द्वारा समर्थित हैं। जिस प्रकार सोमरस अभिषुत करते समय, पत्थर सोम वल्ली के ऊपर नृत्य करते हैं, उसी प्रकार भूमि अभिलाषी आप शत्रुओं के धन पर नृत्य करें ॥५.२०.१०॥

शत्रूषाण्नीषादभिमातिषाहो गवेषणः सहमान उद्भित्।
वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं सांग्रामजित्यायहषमुद्वदेह
॥५.२०.११॥

आप शत्रुओं को विजित करने वाले, सदैव विजय प्राप्त करने वाले, वैरियों को वशीभूत करने वाले तथा खोज करने वाले हैं। आप अपनी वाणी का विस्फोट करते हुए (शत्रु

को) उखाड़ने वाले हैं। आप कुशल वक्ता के समान ध्वनि को भर कर, युद्ध को विजित करने के लिए भली प्रकार गड़गड़ाहट करें ॥५,२०.११॥

अच्युतच्युत्समदो गमिष्ठो मृधो जेता पुरएतायोध्यः ।
इन्द्रेण गुप्तो विदथा निचिक्यद्धृद्द्योतनो द्विषतां याहि शीभम् ॥५,२०.१२॥

हे दुन्दुभिवाद्य !आप न गिरने वाले शत्रुओं को गिरा देते हैं ।आप आनन्दित होने वाले, वीरों को चलाने वाले, युद्धों को विजित करने वाले तथा आगे बढ़ने वाले हैं। आप इन्द्र के द्वारा रक्षित हैं, अतः आपसे कोई युद्ध नहींकर सकता ।आप युद्ध कर्मों को जानते हुए तथा शत्रुओं के हृदय को जलाते हुए शीघ्र ही शत्रुओं की ओर बढ़े ॥५,२०.१२॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त २१ – शत्रुसेनात्रासन सूक्त

दुंदुभि की महिमा का वर्णन

विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे ।
विद्वेषं कश्मशं भयममित्रेषु नि दध्मस्यव एनान् दुन्दुभे जहि ॥५.२१.१॥

हे दुन्दुभिवाद्य ! आप शत्रुओं में वैमनस्य तथा हृदय की व्याकुलता का संचार करें । हम शत्रुओं में द्वेष, भय तथा द्विविधापूर्ण मन:स्थिति स्थापित करने की कामना करते हैं, इसलिए आप उन्हें तिरस्कृत करके मार डालें ॥५.२१.१॥

उद्वेपमाना मनसा चक्षुषा हृदयहन च ।
धावन्तु बिभ्यतोऽमित्राः प्रत्रासेनाज्ये हुते ॥५.२१.२॥

घृत की हवि प्रदान करने पर हमारे शत्रु प्रकम्पित हों और मन, आँख तथा हृदय से भयभीत होकर भाग जाएँ॥५,२१.२॥

वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिर्विश्वगोत्र्यः ।
प्रत्रासममित्रेभ्यो वदाज्येनाभिघारितः ॥५,२१.३॥

हे दुन्दुभि वाद्य ! आप वनस्पतियों (लकड़ियों) से निर्मित हुए हैं और चमड़े की रस्सियों से बँधे हैं। आप मेघों के समान ध्वनि करने वाले हैं । हे घृत से सिंचित दुन्दुभि वाद्य !आप शत्रुओं के लिए दुःखों की घोषणा करें ॥५,२१.३॥

यथा मृगाः संविजन्त आरण्याः पुरुषादधि ।
एव त्वं दुन्दुभेऽमित्रान् अभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥५,२१.४॥

है दुन्दुभि वाद्य ! जिस प्रकार वन के हिरण मनुष्यों से भयभीत होकर भागते हैं, उसी प्रकार आप गर्जना करके

शत्रुओं को भयभीत कर दें तथा उनके मन को मोहित (स्तम्भित) कर लें ॥५.२१.४॥

यथा वृकादजावयो धावन्ति बहु बिभ्यतीः ।
एव त्वं दुन्दुभेऽमित्रान् अभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥५.२१.५॥

हे दुन्दुभि वाद्य ! जिस प्रकार भेड़ियह से भयभीत होकर भेड़-बकरियाँ भागती हैं, उसी प्रकार आप गर्जना करके, शत्रुओं को भयभीत करें और उनके चित्तों को मोहित करें ॥५.२१.५॥

यथा श्येनात्पतत्रिणः संविजन्ते अहर्दिवि सिंहस्य स्तनथोर्यथा ।
एव त्वं दुन्दुभेऽमित्रान् अभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥५.२१.६॥

जिस प्रकार पक्षी 'बाज़' से भयभीत होकर भागते हैं और जिस प्रकार सिंह की दहाड़ से प्राणी दिन-रात भयभीत हुआ करते हैं, उसी प्रकार हे दुन्दुभि वाद्य ! आप गर्जना करके शत्रुओं को भयभीत करें और उनके मन को मोहित करें ॥५,२१.६॥

परामित्रान् दुन्दुभिना हरिणस्याजिनेन च ।
सर्वे देवा अतित्रसन् यह संग्रामस्येषते ॥५,२१.७॥

जो संग्राम के अधिपति हैं, वह सब देवगण हिरण के चमड़े से बनायह हुए नगाड़े के द्वारा शत्रुओं को अत्यन्त भयभीत कर देते हैं ॥५,२१.७॥

यैरिन्द्रः प्रक्रीडते पद्घोषैश्छायया सह ।
तैरमित्रास्त्रसन्तु नोऽमी यह यन्त्यनीकशः ॥५,२१.८॥

इन्द्रदेव जिन पद – चापों से तथा छायारूप सेना के साथ क्रीड़ा करते हैं, उनके द्वारा सैन्यबद्ध होकर चलने कले हमारे शत्रु त्रस्त हो जाएँ ॥५,२१.८॥

ज्याघोषा दुन्दुभयोऽभि क्रोशन्तु या दिशः ।
सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकशः ॥५,२१.९॥

शत्रुओं की संघबद्ध सेनाएँ परास्त होकर जिस दिशा की ओर गमन कर रही हैं, उस तरफ हमारे नगाड़े तथा प्रत्यञ्चाओं के उद्घोष साथ-साथ मिलकर जाएँ ॥५,२१.९॥

आदित्य चक्षुरा दत्स्व मरीचयोऽनु धावत ।
पत्सङ्गिनीरा सजन्तु विगते बाहुवीर्ये ॥५,२१.१०॥

हे सूर्यदेव ! आप शत्रुओं की दृष्टि (शक्ति) का हरण कर लें । हे किरणो ! आप सब रिषुओं के पीछे दौड़े। उनका बाहुबल कम होने पर उनके पैरों में बाँधी जाने वाली रस्सियाँ उलझ जाएँ ॥५,२१.१०॥

यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृनीत शत्रून् ।
सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः ॥५,२१.११॥

हे भूमि को माता मानने वाले शूरवीर मरुतो ! आप राजा सोम, राजा वरुण, महादेव, मृत्यु तथा इन्द्रदेव के साथ संयुक्त होकर शत्रुओं को मसल डालें ॥५,२१.११॥

एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः ।
अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा ॥५,२१.१२॥

यह देव सेनाएँ सूर्य की पताका लेकर और समान विचारों से युक्त होकर, हमारे शत्रुओं को विजित करें, हम यह हवि समर्पित करते हैं ॥५,२१.१२॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त २२ – तक्मनाशन सूक्त

देह को नष्ट कर देने वाले ज्वर का वर्णन

अग्निस्तक्मानमप बाधतामितः सोमो ग्रावा वरुणः पूतदक्षाः।
वेदिर्बर्हिः समिधः शोशुचाना अप द्वेषांस्यमुया भवन्तु ॥५.२२.१॥

अग्निदेव, सोमदेव, ग्रावा, मेघ के देवता इन्द्रदेव, पवित्र बल-सम्पन्न वरुणदेव, वेदी, कुशा तथा प्रज्वलित समिधाएँ ज्वर आदि रोगों को दूर करें और हमारे शत्रु यहाँ से दूर चले जाएँ ॥५.२२.१॥

अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोष्युच्छोचयन्न् अग्निरिवाभिदुन्वन् ।
अधा हि तक्मन्न् अरसो हि भूया अधा न्यङ्ङधरान् वा परेहि ॥५.२२.२॥

हे जीवन को दु:खमय बनाने वाले ज्वर !आप जो समस्त मनुष्यों को निस्तेज बनाते हैं और अग्नि के समान संतप्त करते हुए उन्हें कष्ट प्रदान करते हैं, अत: आप नीरस (निर्बलो हो जाएँ और नीचे के स्थान से दूर चले जाएँ॥५,२२.२॥

यः परुषः पारुषेयोऽवध्वंस इवारुणः ।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुवा ॥५,२२.३॥

जो अत्यन्त कठोर है और कठोरता के कारण अवध्वंस के समान लाल (खूनी) रंग वाला है, हे सब प्रकार की सामर्थ्य वाले ! ऐसे ज्वर को आप अधोमुखी करके दूर करें ॥५,२२.३॥

अधराञ्चं प्र हिणोमि नमः कृत्वा तक्मने ।
शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् ॥५,२२.४॥

हम ज्वर को नमस्कार करके नीचे उतार देते हैं। शाक खाने वाले मनुष्यों के मुक्के से विनष्ट होने वाला यह रोग, अत्यधिक वर्षा वाले देशों में बारम्बार आ जाता है ॥५,२२.४॥

ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः ।
यावज्जातस्तक्मंस्तावान् असि बल्हिकेषु न्योचरः ॥५,२२.५॥

इस ज्वर का निवास 'मॅज' नामक घास वाला स्थान है और इसका घर महावृष्टि वाला स्थान हैं । हे ज्वर ! जब से आप उत्पन्न हुए हैं, तब से आप 'बाल्हीकों ' में दृष्टिगोचर होते हैं ॥५,२२.५॥

तक्मन् व्याल वि गद व्यङ्ग भूरि यावय ।
दासीं निष्टक्करीमिछ तां वज्रेण समर्पय ॥५,२२.६॥

हे सर्प के सदृश जीवन को दु:खमय बनाने वाले तथा विरूप अंग करने वाले ज्वर ! आप विशिष्ट रोग हैं । अत: आप हम से अत्यन्त दूर चले जाएँ और निकृष्टता (मलीनता) में निवास करने वालों पर अपना वज्र चलाएँ ॥५,२२.६॥

तक्मन् मूजवतो गछ बल्हिकान् वा परस्तराम् ।
शूद्रामिछ प्रफर्व्यं तां तक्मन् वीव धूनुहि ॥५,२२.७॥

हे जीवन को कष्टमय बनाने वाले ज्वर ! आप 'मॅज' वाले स्थान अथवा उससे भी दूर के 'बाल्हीक' देशों में जाने की अभिलाषा करें । हे तक्मन् ! आप पहली अवस्था वाली शूद्रा (अवसादग्रस्त) की कामना करें और उसे विशेष रूप से कँपा दें ॥५,२२.७॥

महावृषान् मूजवतो बन्ध्वद्धि परेत्य ।
प्रैतानि तक्मने ब्रूमो अन्यक्षेत्राणि वा इमा ॥५,२२.८॥

आप पूँज वाले तथा महावृष्टि वाले प्रदेशों में गमन करें और वहाँ पर बाँधने वालों (अवरोध उत्पन्नकर्ताओं) का भक्षण करें। इन सब (अवांछनीय व्यक्तियों) अथवा अन्य क्षेत्रों को हम ज्वर के लिए कहते (प्रेरित करते हैं ॥५,२२.८॥

अन्यक्षेत्रे न रमसे वशी सन् मृडयासि नः ।
अभूदु प्रार्थस्तक्मा स गमिष्यति बल्हिकान् ॥५,२२.९॥

आप अन्य क्षेत्रों में नहीं रमते हैं । आप हमारे वशीभूत रहकर हमें सुख प्रदान करते हैं । यह ज्वर प्रबल हो गया है, अब वह 'बाल्हीकों' (हिंसकों) के पास जाएगा ॥५,२२.९॥

यत्त्वं शीतोऽथो रूरः सह कासावेपयः ।
भीमास्ते तक्मन् हेतयस्ताभिः स्म परि वृङ्ग्धि नः ॥५,२२.१०॥

आप जो शीत के साथ आने वाले हैं अथवा सर्दी के बाद आने वाले हैं अथवा खाँसी के साथ कैंपाने वाले हैं । हे ज्वर ! यही आपके भयंकर हथियार हैं; उनसे आप हमें मुक्त करें ॥५,२२.१०॥

मा स्मैतान्त्सखीन् कुरुथा बलासं कासमुद्युगम् ।
मा स्मातोऽर्वाङैः पुनस्तत्त्वा तक्मन्न् उप ब्रुवे ॥५,२२.११॥

हे ज्वर ! आप कफ, खाँसी तथा क्षय आदि रोगों को अपना मित्र ने बनाएँ और उस स्थान से हमारे समीप न आएँ । हे ज्वर ! इस बात को हम आपसे पुनः कहते हैं ॥५,२२.११॥

तक्मन् भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह ।
पाप्मा भ्रातृव्येण सह गछामुमरणं जनम् ॥५,२२.१२॥

हे ज्वर ! आप अपने भाई कफ, बहन खाँसी नथ भतीजे पाप (दुष्कर्म) के साथ मलीन मनुष्यों के समीप गमन करें ॥५,२२.१२॥

तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम् ।
तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम् ॥५,२२.१३॥

(हे देव !} आप तीसरे दिन आने वाले (तिजारी), तीन दिन छोड़कर आने वाले (चौथिया), सदैव रहने वाले, पीड़ा देने वाले तथा शरद् ऋतु, वर्षा ऋतु और ग्रीष्म ऋतु में होने वाले ज्वरों तथा ठण्डी लाने वाले ज्वरोंको विनष्ट करें ॥५,२२.१३॥

गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः ।
प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मसि ॥५,२२.१४॥

जिस प्रकार भेजे जाने वाले ख़जाने की सुरक्षा करने वाले मनुष्य गांधार, मॅजवान् , अंग तथा मगध देशों में भेजे जाते हैं, उसी प्रकार इस कष्टदायक रोग को हम (दूर) भेजते हैं ॥५,२२.१४॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त २३ – कृमिघ्न सूक्त

इंद्र की स्तुति

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति ॥५,२३.१॥

घुलोक, पृथ्वीलोक, देवी सरस्वती, इन्द्रदेव तथा अग्निदेव परस्पर एक साथ होकर हमारे लिए कृमियों का विनाश करें ॥५,२३.१॥

अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन् धनपते जहि ।
हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम ॥५,२३.२॥

हे धनपते इन्द्रदेव ! आप इस कुमार के शत्रुरूप कृमियों का निवारण करें। हमारे उग्र वचनों (मन्त्रों) द्वारा समस्त कष्टदायी कृमियों का विनाश करें ॥५,२३.२॥

यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति ।
दतां यो मध्यं गछति तं क्रिमिं जम्भयामसि ॥५,२३.३॥

जो कीड़े नेत्रों में भ्रमण करते हैं, जो नाकों में भ्रमण करते हैं तथा जो दाँतों के बीच में चलते हैं, उन कीड़ों को हम विनष्ट करते हैं ॥५,२३.३॥

सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः ॥५,२३.४॥

दो कीड़े समानरूप वाले होते हैं, दो विपरीतरूप वाले, दो काले रंग वाले, दो लाल रंग वाले, एक भूरे रंग वाले, एक भूरे कान वाले, एक गिद्ध तथा एक भेड़िया, यह सब मन्त्र बल द्वारा विनष्ट हो गए ॥५,२३.४॥

यह क्रिमयः शितिकक्षा यह कृष्णाः शितिबाहवः ।
यह के च विश्वरूपास्तान् क्रिमीन् जम्भयामसि ॥५,२३.५॥

जो कीड़े तीखी कोख वाले हैं, जो कीड़े काली और तीखी भुजा वाले हैं तथा जो विविधरूप वाले हैं, उन समस्त कीड़ों को हम मन्त्र – बल से विनष्ट करते हैं ॥५,२३.५॥

उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
दृष्टांश्च घ्नन् अदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् ॥५,२३.६॥

विश्वद्रष्टा सूर्यदेव दिखने वाले तथा न दिखने वाले (कृमियों) के विनाशक हैं । वह दृश्य-अदृश्य सभी प्रकार के कृमियों को रौंद डालते हैं ॥५,२३.६॥

यहवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपविल्लुकाः ।
दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम् ॥५,२३.७॥

जो शीघ्र गमन करने वाले, अत्यधिक पीड़ा देने वाले तथा कैंपाने वाले तेजस्वी कीड़े हैं, वह सब दिखाई देने वाले तथा न दिखाई देने वाले कृमि विनष्ट हो जाएँ ॥५,२३.७॥

हतो यहवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत ।
सर्वान् नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वामिव ॥५,२३.८॥

कीटाणुओं में से तीक्ष्ण गमन करने वाले कीड़े मन्त्र बल से विनष्ट हो गए और 'नदनिमा' नामक कीड़े भी मारे गयह। जिस प्रकार पत्थर से चना मसला जाता है, उसी प्रकार हमने इन सबको मसल कर नष्ट कर दिया ॥५,२३.८॥

त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥५,२३.९॥

तीन सिर, तीन ककुद, विचित्र रंग तथा सफेद रंगवाले कीटाणुओं को हम विनष्ट करते हैं। उनकी पसलियों को तोड़ते हुए, हम उनके सिरों को भी कुचलते हैं ॥५,२३.९॥

अत्रिवद्वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥५,२३.१०॥

हे कृमियो ! जिस प्रकार 'अत्रि', 'कण्व' तथा 'जमदग्नि ऋषियों ने आपको विनष्ट किया था, उसी प्रकार हम भी करते हैं और अगस्त्य ऋषि के मन्त्र बल से आपको कुचल देते हैं ॥५,२३.१०॥

हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः ।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥५,२३.११॥

हमारे मंत्र तथा औषधि के बल से कृमियों का राजा और उसका मंत्री मारा गया । उसकी माता, भाई तथा बहन के विनष्ट होने से कृमियों का परिवार पूरी तरह से नष्ट हो गया ॥५,२३.११॥

हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो यह क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥५,२३.१२॥

इस कृमि के परिवार वाले मारे गए और इसके समीप के घर वाले भी मारे गए तथा जो छोटे-छोटे कृमि बीज रूप में थे, वह भी मारे गए ॥५,२३.१२॥

सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीनाम् ।
भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ॥५,२३.१३॥

समस्त पुरुष कृमियों तथा समस्त मादा कृमियों के सिर को हम पत्थर से तोड़ते हैं और अग्नि के द्वारा उनके मुँह को जला देते हैं ॥५,२३.१३॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त २४- ब्रह्मकर्म सूक्त

सविता, अग्नि, द्यावा और पृथ्वी, वरुण, मित्र, वायु देव, चंद्रमा आदि की स्तुति

सविता प्रसवानामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम् ।
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५,२४.१॥

भगवान् सवितादेव समस्त उत्पन्न पदार्थों के अधिपति हैं। वह इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति (अग्निशाला-यज्ञकुण्ड) में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वादात्मक कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हेंहवि समर्पित करते हैं ॥५,२४.१॥

अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम् ।
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५.२४.२॥

अग्निदेव वनस्पतियों के अधिपति हैं। वह इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥५.२४.२॥

द्यावापृथिवी दातृणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम् ।
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५.२४.३॥

द्यावा-पृथिवी दाताओं की स्वामिनी हैं । वह इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा

आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥५,२४.३॥

वरुणोऽपामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम् ।
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५,२४.४॥

वरुणदेव जल के स्वामी हैं । वह इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥५,२४.४॥

मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ मावताम् ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम् ।
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५,२४.५॥

मित्र और वरुणदेव वृष्टि के स्वामी हैं । वह इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥५,२४.५॥

मरुतः पर्वतानामधिपतयस्ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम् ।
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५,२४.६॥

मरुद्गण पर्वतों के स्वामी हैं। वह इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥५,२४.६॥

सोमो वीरुधामधिपतिः स मावतु ।

अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम् ।
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५,२४.७॥

सोमदेव औषधियों के स्वामी हैं। वह इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥५,२४.७॥

वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम् ।
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५,२४.८॥

वायुदेव अन्तरिक्ष के स्वामी हैं। वह इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा

आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥५,२४.८॥

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम् ।
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५,२४.९॥

सूर्यदेव आँखों के स्वामी हैं। वह इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥५,२४.९॥

चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम् ।

चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५,२४.१०॥

चन्द्रदेव नक्षत्रों के स्वामी हैं। वह इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥५,२४.१०॥

इन्द्रो दिवोऽधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम् ।
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५,२४.११॥

स्वर्गलोक के स्वामी इन्द्रदेव हैं। वह इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥५,२४.११॥

मरुतां पिता पशूनामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम् ।
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५.२४.१२॥

मरुतों के पिता पशुओं के स्वामी हैं। वह इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वादात्मक कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥५.२४.१२॥

मृत्युः प्रजानामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम् ।
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५.२४.१३॥

प्रजाओं की स्वामिनी 'मृत्यु' हैं। वह इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वादात्मक कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥५,२४.१३॥

यमः पितृणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम् ।
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५,२४.१४॥

पितरों के स्वामी यमदेव हैं। वह इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥५,२४.१४॥

पितरः परे ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम् ।

चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५,२४.१५॥

सात पीढ़ियों से ऊपर के पितरगण इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥५,२४.१५॥

तता अवरे ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिस्ठायामस्याम् ।
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५,२४.१६॥

वह सपिण्ड पितर (पिछले पितामह) इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वादात्मक कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥५,२४.१६॥

ततस्ततामहास्ते मावन्तु ।

अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम् ।
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५,२४.१७॥

वह बड़े प्रपितामह इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥५,२४.१७॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त २५- गर्भाधान सूक्त

अग्नि, वरुण, मित्र आदि की स्तुति

पर्वताद्दिवो योनेरङ्गादङ्गात्समाभृतम् ।
शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत्॥५,२५.१॥

पर्वत की (औषधियों) से स्वर्गलोक के (पुण्यों या सूक्ष्म प्रवाहों) से तथा अंग-प्रत्यंग से एकत्रित एवं पुष्ट वीर्य धारण करने वाले पुरुष, जल प्रवाह में पत्ते रखने के समान गर्भ स्थान में गर्भ को स्थापित करते हैं ॥५,२५.१॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।
एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे ॥५,२५.२॥

जिस प्रकार यह विस्तृत पृथ्वी समस्त भूतों के गर्भ को धारण करती है, उसी प्रकार मैं आपका गर्भ धारण करती

हूँ और उसकी सुरक्षा के लिए आपका आवाहन करती हूँ ॥५,२५.२॥

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ॥५,२५.३॥

हे सिनीवाली ! आप गर्भ को संरक्षण प्रदान करें । हे सरस्वती देवि ! आप गर्भधारण में सहायक हों । हे स्त्री ! स्वर्णिम कमल के आभूषणों के धारणकर्ता अश्विनीकुमार आप में गर्भ को स्थिरता प्रदान करें ॥५,२५.३॥

गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः ।
गर्भं त इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते ॥५,२५.४॥

मित्र और वरुणदेव आपके गर्भ को पशत्रु ष्ट करें। बृहस्पतिदेव, इन्द्रदेव, अग्निदेव तथा धातादेव आपके गर्भ को धारण करें ॥५,२५.४॥

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥५,२५.५॥

विष्णुदेव (नारी या प्रकृति को) गर्भाधान की क्षमता से युक्त करें । त्वष्टादेव उसके विभिन्न अवयवों का निर्माण करें । प्रजापति सेचन प्रक्रिया में सहायक हों और धाता गर्भधारण में सहयोग करें ॥५,२५.५॥

यद्वेद राजा वरुणो यद्वा देवी सरस्वती ।
यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद्गर्भकरणं पिब ॥५,२५.६॥

जिस गर्भकरण-क्रिया को राजा वरुणदेव जानते हैं, जिसको देवी सरस्वती जानती हैं तथा जिसको वृत्रहन्ता इन्द्रदेव जानते हैं, उस गर्भ स्थिर रखने वाले रस का आप पान करें ॥५,२५.६॥

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भमेह धाः ॥५,२५.७॥

हे अग्निदेव ! आप औषधियों तथा वनस्पतियों के गर्भ हैं और आप समस्त भूतों के भी गर्भ हैं, इसलिए, आप हमारे इस गर्भ को धारण करें ॥५,२५.७॥

अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम् ।
वृषासि वृष्ण्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ॥५,२५.८॥

हे वीर्यवान् ! आप बलवान् हैं । आप उठकर खड़े हों और पराक्रम करते हुए गर्भाशय में गर्भ की स्थापना करें । हम आपको केवले सन्तान के निमित्त ही ले जाते हैं ॥५,२५.८॥

वि जिहीष्व बार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम् ।
अदुष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयाविनम् ॥५,२५.९॥

हे अत्यन्त सान्त्वना वाली (अथवा सामगान करने वाली) साध्वी ! आप विशेषरूप से सजग रहें, हम आपके गर्भाशय में गर्भ की स्थापना करते हैं । सोमपायो देवों ने आप दोनों की सुरक्षा करने वाला पुत्र प्रदान किया है॥५,२५.९॥

धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥५,२५.१०॥

हे धातादेव ! इस स्त्री की दोनों गर्भ धारण करने वाली नाड़ियों के बीच में, मनोहर रूप वाले पुरुष संतान की

स्थापना करें और उसे दसवें महीने में उत्पन्न होने के लिए योग्य बनाएँ ॥५,२५.१०॥

त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥५,२५.११॥

हे त्वष्टादेव ! इस स्त्री की दोनों गर्भ धारण करने वाली नाड़ियों के बीच में, मनोहर रूप वाले पुरुष संतान की स्थापना करें और उसे दसवें महीने में उत्पन्न होने के लिए योग्य बनाएँ ॥५,२५.११॥

सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥५,२५.१२॥

हे सवितादेव ! इस स्त्री की दोनों गर्भ धारण करने वाली नाड़ियों के बीच में, मनोहर रूप वाले पुरुष संतान की स्थापना करें और उसे दसवें महीने में उत्पन्न होने के लिए योग्य बनाएँ ॥५,२५.१२॥

प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥५,२५.१३॥

हे प्रजापते ! इस स्त्री की दोनों गर्भ धारण करने वाली नाड़ियों के बीच में, मनोहर रूप वाले पुरुष संतान की स्थापना करें और उसे दसवें महीने में उत्पन्न होने के लिए योग्य बनाएँ ॥५,२५.१३॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त २६ – नवशाला सूक्त

अग्नि, सविता देव, इंद्र व अश्विनीकुमारों की स्तुति

यजूंषि यज्ञे समिधः स्वाहाग्निः प्रविद्वान् इह वो युनक्तु ॥५,२६.१॥

हे यजुर्वेदीय मन्त्र तथा समिधाओ ! विशेष ज्ञानी अग्निदेव इस यज्ञ में आपसे मिलें, उनके लिए हम हवि' समर्पित करते हैं ॥५,२६.१॥

युनक्तु देवः सविता प्रजानन्न् अस्मिन् यज्ञे महिषः स्वाहा ॥५,२६.२॥

परम ज्ञानी सवितादेव इस यज्ञ में सम्मिलित हों, उनके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥५,२६.२॥

इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥५,२६.३॥

हे उक्थ (स्तोत्र) ! ज्ञानी इन्द्रदेव इस यज्ञ में आपसे मिलें, उनके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥५,२६.३॥

प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥५,२६.४॥

हे शिष्ट मनुष्यो ! आप अपनी पत्नियों से मिलकर उनके साथ इस यज्ञ में आज्ञारूप वचनों को धारण करें । आपके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥५,२६.४॥

छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ॥५,२६.५॥

जिस प्रकार माता पुत्र का पोषण करती है, उसी प्रकार मरुद्गण इस यज्ञ में सम्मिलित होकर छन्दों का पोषण करें, उनके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥५,२६.५॥

एयमगन् बर्हिषा प्रोक्षणीभिर्यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ॥५,२६.६॥

यह देवी अदिति कुशाओं तथा प्रोक्षणियों के सहित इस यज्ञ को समृद्ध करती हुई पधारी हैं, उनके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥५,२६.६॥

विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥५,२६.७॥

भगवान् विष्णु अपनी तप: शक्ति को इस यज्ञ में सम्मिलित करें, उनके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥५,२६.७॥

त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा अस्मिन् यज्ञे युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥५,२६.८॥

ज्ञानी त्वष्टादेव विधिवत् ठीक किए गए अनेक रूपों को इस यज्ञ में संयुक्त करें, उनके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥५,२६.८॥

भगो युनक्त्वाशिषो न्वस्मा अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥५,२६.९॥

ज्ञानी भगदेव अपने श्रेष्ठ आशीर्वादों को इस यज्ञ में सम्मिलित करें, उनके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥५,२६.९॥

सोमो युनक्तु बहुधा पयांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥५,२६.१०॥

ज्ञानी सोम इस यज्ञ में अपने जल (रसों) को अनेक प्रकार से संयुक्त करें, उनके लिए हवि समर्पित करते हैं॥५,२६.१०॥

इन्द्रो युनक्तु बहुधा पयांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥५,२६.११॥

ज्ञानी इन्द्र अपने पराक्रम को इस यज्ञ में अनेक प्रकार से संयुक्त करें, उनके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥५,२६.११॥

अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ ।
बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ्यज्ञो अयं स्वरिदं यजमानाय स्वाहा ॥५,२६.१२॥

हे अश्विनीकुमार ! आप दोनों मंत्र तथा दान द्वारा यज्ञ को समृद्ध करते हुए हमारे पास पधारें । हे बृहस्पते ! आप मंत्रों के साथ हमारे समीप पधारें । यह यज्ञ, याजक को स्वर्ग प्रदान करने वाला हो, अश्विनीकुमारों तथा बृहस्पतिदेव के लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥५,२६.१२॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त २७ – अग्नि सूक्त

अग्नि सभी देवों में श्रेष्ठ

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचीष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकः ससूनुस्तनूनपादसुरो भूरिपाणिः ॥५,२७.१॥

इस अग्नि की समिधाएँ तथा इसकी पवित्र ज्वालाएँ ऊर्ध्वमुखी होती हैं। यह अग्निदेव अत्यन्त, प्रकाश वाले तथा मनोहर रूप वाले हैं। वह सूर्य के सदृश प्राण प्रदान करने वाले तथा यज्ञ में अनेक हाथों (ज्वालाओं) वाले हैं ॥५,२७.१॥

देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन ॥५,२७.२॥

समस्त देवताओं में यह प्रमुख देव हैं । यह मधु तथा घृत से मार्गों को पवित्र करते हैं ॥५,२७.२॥

मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानो नराशंसो अग्निः सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥५,२७.३॥

मनुष्यों द्वारा प्रशंसनीय और सत्कर्म करने वाले सवितादेव तथा सबके द्वारा वरणीय अग्निदेव मधुरता से यज्ञ को संयुक्त करते हुए संव्याप्त हो रहे हैं ॥५,२७.३॥

अछायमेति शवसा घृता चिदीदानो वह्निर्नमसा ॥५,२७.४॥

यह अग्निदेव घृत, बल तथा हविष्यान्न से स्तुत होकर सम्मुख पधारते हैं ॥५,२७.४॥

अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षु स यक्षदस्य महिमानमग्नेः ॥५,२७.५॥

देवों की अत्यधिक संगति वाले यज्ञों में अग्निदेव उसकी महिमा तथा सुचाओं को स्वयं से संयुक्त करें ॥५,२७.५॥

तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन् वसुधातरश्च ॥५,२७.६॥

तारक अग्निदेव तथा ऐश्वर्य- पोषक वसुदेव आनन्द प्रदान करने वाले और देवों की संगति करने वाले यज्ञों में विद्यमान रहते हैं ॥५,२७.६॥

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा ॥५,२७.७॥

दिव्य द्वार तथा विश्वेदेव, इस याजक के संकल्प की विविध प्रकार से सुरक्षा करते हैं ॥७॥

उरुव्यचसाग्नेर्धाम्ना पत्यमाने ।
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥५,२७.८॥

अग्नि के विस्तृत धामों से अवतरित होने वाली, गतिशील, साथ रहने वाली उषा और नक्ता (सन्ध्या-रात्रि) हमारे इस हिंसारहित यज्ञीय प्रयोग की सुरक्षा करें ॥५,२७.८॥

दैवा होतार ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वयाभि गृनत गृनता नः स्विष्टयह ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना ॥५,२७.९॥

हे दिव्य होताओ ! आप अपनी जिह्वा से हमारे कल्याण के लिए उच्चस्तरीय यज्ञाग्नि की प्रशंसा करें। इड़ा (पृथिवी) भारती तथा सरस्वती यह तीनों देवियाँ गुणगान करती हुई इस कुशा पर विराजे ॥५,२७.९॥

तन् नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु ।
देव त्वष्टा रायस्पोषं वि ष्य नाभिमस्य ॥५,२७.१०॥

हे त्वष्टा !आप हमें प्रचुर अन्न, जल तथा ऐश्वर्य की पुष्टि प्रदान करें और इस(थैली) की मध्य ग्रन्थि को खोलें॥५,२७.१०॥

वनस्पतेऽव सृजा ररा॒णः ।
त्मना देवेभ्यो अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयतु ॥५,२७.११॥

हे वनस्पते !आप ध्वनि करते हुए स्वयं को छोड़े और शमन करने वाले अग्निदेव हवनीय पदार्थों को देवों के लिए स्वादिष्ट बनाएँ ॥५,२७.११॥

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः ।
इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥५,२७.१२॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! आप इन्द्रदेव के लिए स्वाहाकार यज्ञ सम्पादित करें और समस्त देवता इस हव्य का सेवन करें ॥५,२७.१२॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त २८- दीर्घायु सूक्त

उषा देवी, आदित्य आदि का वर्णन

नव प्राणान् नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
हरिते त्रीणि रजते त्रीण्ययसि त्रीणि तपसाविष्टितानि ॥५,२८.१॥

सौं वर्ष की (पूर्ण) आयु के लिए नौ प्राणों को नौ (शरीरस्थ नौ चक्रों अथवा अगले मंत्र में वर्णित नौ दिव्य धाराओं) के साथ संयुक्त करते हैं। इनमें से तीन हरित (सत् तत्त्वयुक्त, स्वर्णयुक्त अथवा लुभावने) हैं, तीन रजत के (रज तत्त्व, चाँदी या प्रकाशयुक्त अथवा सुखकर) हैं तथा तीन अयस् (तामसिक, लोहे के अथवा शुभकारक) हैं। वह तपः (स्थूल ताप या साधना से उत्पन्न ऊर्जा) के द्वारा भली प्रकार स्थित होते हैं ॥५,२८.१॥

अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरन्तरिक्षं प्रदिशो दिशश्च ।
आर्तवा ऋतुभिः संविदाना अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु
॥५,२८.२॥

अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, अन्तरिक्ष, द्युलोक, दिशा-उपदिशा तथा ऋतु- ऋतु विभाग (यह नौ) ईस त्रिवृत् के संयोग से हमें पार लगा दें, लक्ष्य तक पहुँचा दें ॥५,२८.२॥

त्रयः पोषास्त्रिवृति श्रयन्तामनक्तु पूषा पयसा घृतेन ।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम्
॥५,२८.३॥

इस त्रिवत् में तीन पुष्टियाँ आश्रित हों । पूषा (पुष्ट्रियों के देवता तुम्हारे आश्रय में दुग्ध- घृतादि की वृद्धि, अन्न की प्रचुरता, पुरुषों तथा पशुओं की अधिकता प्रदान करें ॥५,२८.३॥

इममादित्या वसुना समुक्षतेममग्ने वर्धय ववृधानः ।

इममिन्द्र सं सृज वीर्येणास्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्णु ॥५,२८.४॥

हे आदित्यदेव ! आप इस साधक को ऐश्वर्य से पूर्ण करें । हे अग्निदेव ! आप स्वयं बढ़ते हुए इसको भी बेढ़ाएँ। हे इन्द्रदेव ! आप इसको बल से युक्त करें । पालन करने वाले त्रिवृत् इसमें आश्रय ग्रहण करें ॥५,२८.४॥

भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृदग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः । वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् ॥५,२८.५॥

हरित (स्वर्ण या हरियाली) के द्वारा भूमि आपकी सुरक्षा करे । विश्व – पोषक तथा प्रेमपूर्ण अग्निदेव अयस् (लोहे या कर्म शक्ति) से आपका पालन करें और औषधियुक्त अर्जुन (श्वेत, रजस्-चन्द्रमा) आपके मन में शुभ संकल्पमय सामर्थ्य स्थापित करें ॥५,२८.५॥

त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं बभूव सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत्।
अपामेकं वेधसां रेत आहुस्तत्ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे ॥५,२८.६॥

यह हिरण्य (स्वर्ण अथवा हिरण्यगर्भ- मूल उत्पादक तेज) जन्म से ही तीन तरह से पैदा हुआ। इसका पहला जन्म अग्निदेव को परम प्रिय हुआ, दूसरा कूटे गए सोम से बाहर निकला और तीसरे को सारभूत जल का वीर्यरूप कहते हैं । (हे धारणकर्ता) यह हिरण्यमय त्रिवृत् आपके लिए आयुष्य देने वाला हो ॥५,२८.६॥

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम् ॥५,२८.७॥

जमदग्नि (ऋषि अथवा प्रज्वलित अग्नि) के तीन आयुष्य, कश्यप (ऋषि अथवा तत्त्वदर्शी) के तीन आयुष्य तथा अमृत तत्त्व को तीन प्रकार से धारण करने वाले दर्शन, इन तीनों

के द्वारा तुम्हारे आयुष्य को (संस्कारित या पुष्ट) करते हैं ॥५,२८.७॥

त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्न् एकाक्षरमभिसंभूय शक्राः ।
प्रत्यौहन् मृत्युममृतेन साकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा ॥५,२८.८॥

जब एक अक्षर (3ॐ या अविनाशीं) के साथ तीन सुपर्ण (श्रेष्ठ किरणों से युक्त) त्रिवृत् बनाकर समर्थ बनते हैं, तब वह अमृत से युक्त होकर समस्त विकारों का निवारण करते हुए मृत्यु को दूर हटा देते हैं ॥५,२८.८॥

दिवस्त्वा पातु हरितं मध्यात्त्वा पात्वर्जुनम् ।
भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद्देवपुरा अयम् ॥५,२८.९॥

हरित (हिरण्य या सत्) आपकी धुलोक से सुरक्षा करें, सफेद (चाँदी या-रजस्) मध्यलोक से सुरक्षा करें तथा

अयस् (लोहा या कर्मशक्ति) भूलोक से सुरक्षा करें। यह (ज्ञान) देवों की पुरियों में प्राप्त हुआ है ॥५,२८.९॥

इमास्तिस्रो देवपुरास्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः ।
तास्त्वं बिभ्रद्वर्चस्व्युत्तरो द्विषतां भव ॥५,२८.१०॥

यह देवों की तीन पुरियाँ चारों तरफ से आपकी सुरक्षा करें । उनको धारण करके, आपके तेजस्वी होते हुए शत्रुओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ हों ॥५,२८.१०॥

पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आबेधे प्रथमो देवो अग्रे ।
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोम्यनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे ॥५,२८.११॥

देवताओं की स्वर्णिम नगरी अमृत स्वरूप है। जिस प्रमुख देव ने सबसे पहले इनको (त्रितों को) बँधा (धारण किया था, उनको हम अपनी दस अँगुलियाँ जोड़कर नमस्कार करते

हैं। वह देवगण इस त्रिवृत् को बाँधनेमें हमें भी अनुमति प्रदान करें ॥५,२८.११॥

आ त्वा चृतत्वर्यमा पूषा बृहस्पतिः ।
अहर्जातस्य यन् नाम तेन त्वाति चृतामसि ॥५,२८.१२॥

अर्यमादेव, पूषादेव तथा बृहस्पतिदेव आपको भली प्रकार बाँधे । प्रतिदिन पैदा होने वाले (सूर्य या प्रकाश) के नाम के साथ (साक्षी में) हम भी आपको बाँधते (धारण करते हैं ॥१२॥

ऋतुभिष्ट्वार्तवैरायुषे वर्चसे त्वा ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि ॥५,२८.१३॥

हम आपको आयुष्य तथा वर्चस् की प्राप्ति के लिए ऋतुओं, ऋतुओं के विभागों तथा संवत्सरों के उस (समर्थ) तेजस् से युक्त करते हैं ॥५,२८.१३॥

घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु ।
भिन्दत्सपत्नान् अधरांश्च कृण्वदा मा रोह महते सौभगाय
॥५,२८.१४॥

आप घृत सारतत्त्व से पूर्ण, मधु (मधुरता) से सिंचित, पृथ्वी के सदृश स्थिर तथा पार लगाने वाले हैं। आप शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करके उन्हें नीचा दिखाते हुए, हमें बृहत् सौभाग्य प्राप्त कराने के लिए हमारे ऊपर स्थिर हों ॥५,२८.१४॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त २९- रक्षोच्च सूक्त

जातवेद अग्नि देव की स्तुति

पुरस्ताद्युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।
त्वं भिषग्भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम
॥५,२९.१॥

हे 'जातवेदा अग्ने ! आप औषधि जानने वाले वैद्य हैं। आप पहले वाले कार्यों का भार वहन करें तथा वर्तमान में होने वाले कार्यों को जानें । आपकी सहायता से हम गौ, घोड़े तथा मनुष्यों को रोगरहित अवस्था में पाएँ ॥५,२९.१॥

तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ।
यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति
॥५,२९.२॥

हे जातवेदा अग्ने ! आप समस्त देवताओं के साथ मिलकर ऐसा उपाय करें कि जिससे उस रोग की परिधि गिर जाए, जो हमें पीड़ा देते हैं तथा जो हमें खा जाना चाहते हैं ॥५,२९.२॥

यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः ।
विश्वेभिर्देवैर्सह संविदानः ॥५,२९.३॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! आप देवों के साथ मिलकर ऐसा उपाय करें कि जिससे उस रोग की घेराबन्दी टूट जाए ॥५,२९.३॥

अक्ष्यौ नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि ।
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति शृणीहि ॥५,२९.४॥

हे अग्नदेव ! जो पिशाच इसको खाने की इच्छा कर चुके हैं, उनकी आँखों तथा उनके हृदयों को आप बींध डालें । उनकी जीभ को काट डालें । हे बलवान् अग्निदेव ! आप उन्हें विनष्ट कर डालें ॥५,२९.४॥

यदस्य हृतं विहृतं यत्पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत्पिशाचैः ।
तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः
॥५,२९.५॥

पिशाचों ने इसके शरीर का जो भाग हर लिया है, छीन लिया है, लूट लिया है तथा जो भाग खा लिया है, हैं। ज्ञानी अग्ने ! उस भाग को आप पुन: भर दें। इसके शरीर में मांस तथा प्राणों को हम विधिवत् प्रयोगों से पुनः स्थापित करते हैं ॥५,२९.५॥

आमे सुपक्के शबले विपक्के यो मा पिशाचो अशने ददम्भ ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोऽयमस्तु
॥५,२९.६॥

जो पिशाच (कृमि) कच्चे-पक्के, आधे पके तथा विशेष पके भोजन में प्रवेश करके हमें हानि पहुँचाते हैं, ऐसे पिशाच स्वयं तथा अपनी सन्तानों के साथ कष्ट भोगें और यह रोगी नीरोग हो जाए ॥५,२९.६॥

क्षिरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्ये यः ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोऽयमस्तु
॥५,२९.७॥

जो पिशाच (कृमि दुग्ध मंथ (मठा) तथा बिना खेती उत्पन्न होने वाले अन्न (खाद्यों) में प्रवेश करके हमें हानि पहुँचाते हैं, वह पिशाच स्वयं तथा अपनी संतानों के साथ कष्ट भोगें और यह रोगी नीरोग हो जाए ॥५,२९.७॥

अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद्यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोऽयमस्तु
॥५,२९.८॥

जो पिशाच (कृमि) जलपान करते समय तथा बिछौने पर शयन करते समय हमें पीड़ित करते हैं, वह पिशाच अपनी प्रजाओं के साथ दूर हट जाएँ और यह रोगी नीरोग हो जाए ॥५.२९.८॥

दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद्यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोऽयमस्तु ॥५.२९.९॥

जो पिशाच (कृमि) रात अथवा दिन में बिस्तर पर सोते समय हमें पीड़ित करते हैं, वह पिशाच अपनी प्रजाओं सहित दूर हटे जाएँ और यह रोगी नीरोग हो जाए ॥५.२९.९॥

क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः ।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः ॥५.२९.१०॥

हे जातवेदा अग्ने ! आप मांसभक्षक, रक्तभक्षक तथा मन मारने वाले पिशाचों को विनष्ट करें । शक्तिशाली इन्द्रदेव उन्हें वज्र से मारें और निर्भीक सोमदेव उनके सिर को काटें ॥५,२९.१०॥

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूरान् अनु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥५,२९.११॥

है अग्निदेव ! कष्ट देने वाले यातुधानियों को आप सदैव विनष्ट करते हैं और संग्राम में असुरगण आपको पराजित नहीं कर पाते । आप मांस भक्षण करने वालों को समूल भस्म करें, आपके दिव्य हथियारों से कोई छूटने न पाए ॥५,२९.११॥

समाहर जातवेदो यद्धृतं यत्पराभृतम् ।
गात्राण्यस्य वर्धन्तामंशुरिवा प्यायतामयम् ॥५,२९.१२॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! इस व्यक्ति का जो भाग हर लिया गया है तथा विनष्ट कर दिया गया है, उस भाग को आप पुनः भर दें, जिससे इसके अंग-प्रत्यंग पुष्ट होकर चन्द्रमा की भाँति वृद्धि को प्राप्त हों ॥५,२९.१२॥

सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम् ।
अग्ने विरप्शिनं मेध्यमयक्ष्मं कृणु जीवतु ॥५,२९.१३॥

हे जातवेदा अग्ने ! यह पुरुष चन्द्रमा की कलाओं के सदृश वृद्धि को प्राप्त हो । हे अग्ने ! आप इस निर्दोष व्यक्ति को पवित्र एवं नीरोग करें, जिससे यह जीवित रहे ॥५,२९.१३॥

एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः ।
तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः ॥५,२९.१४॥

हे अग्ने ! आपकी यह समिधाएँ पिशाचों (कृमियों) को विनष्ट करने वाली हैं। हे जातवेदा अग्ने ! आप इनको स्वीकार करें तथा इन्हें ग्रहण करें ॥५,२९.१४॥

तार्ष्टीरग्ने समिधः प्रति गृह्णाह्यर्चिषा ।
जहातु क्रव्याद्रूपं यो अस्य मांसं जिहीर्षति ॥५,२९.१५॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी लपटों द्वारा तृषा शमन करने वाली समिधाओं को स्वीकार करें । जो मांसभक्षी पिशाच इसके मांस को हरना चाहते हैं, वह अपने रूप को छोड़ दें ॥५,२९.१५॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त ३०- दीर्घायुष्य सूक्त

यम, आयु और अग्नि से प्रार्थना

आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः ।
इहैव भव मा नु गा मा पूर्वान् अनु गाः पितॄन् असुं बध्नामि ते दृढम् ॥५,३०.१॥

आपके अत्यन्त समीप तथा अत्यन्त दूर के स्थान से हम आपके प्राणों को दृढ़ता से बाँधते हैं। आप पूर्व पितरों का अनुसरण न करें (शरीर न छोड़े), यहीं रहें ॥५,३०.१॥

यत्त्वाभिचेरुः पुरुषः स्वो यदरणो जनः ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥५,३०.२॥

यदि आपके अपने लोग अथवा कोई हीन लोग आपके ऊपर अभिचार करते हैं, तो उससे छूटने तथा दूसरे होने की बात (विद्या, विधि) हम कहते हैं ॥५,३०.२॥

यद्दुद्रोहिथ शेपिषे स्त्रियै पुंसे अचित्त्या ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥५,३०.३॥

यदि आपने स्त्री अथवा पुरुष के प्रति द्रोह किया अथवा शाप दिया है, तो उससे छूटने तथा दूर होने की दोनों बातें (विधियाँ) हम आपसे कहते हैं ॥५,३०.३॥

यतेनसो मातृकृताच्छेषे पितृकृताच्च यत्।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥५,३०.४॥

यदि आप माता अथवा पिता के द्वारा किए गए पापों के कारण शयन कर रहे हैं, तो उस (पाप निमित्तक) रोग से छूटने तथा दूर होने की दोनों बातें (विधाएँ) हम बतलाते हैं ॥५,३०.४॥

यत्ते माता यत्ते पिता जमिर्भ्राता च सर्जतः ।
प्रत्यक्सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा ॥५,३०.५॥

जिस औषधि को आपके माता, पिता, भाई तथा बहन ने तैयार किया है, उस औषधि को आप भलीप्रकार सेवन करें । हम आपको वृद्धावस्था तक जीवित रहने वाला बनाते हैं ॥५,३०.५॥

इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह ।
दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि ॥५,३०.६॥

हे मनुष्यो ! आप अपने सम्पूर्ण मन के साथ पहले यहाँ निवास करते हुए जीवित रहें, यमदूतों का अनुसरण न करें ॥५,३०.६॥

अनुहूतः पुनरेहि विद्वान् उदयनं पथः ।
आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम् ॥५,३०.७॥

आप उदित होने के मार्ग को जानने वाले हैं। आप इस कर्म के बाद आवाहित होते हुए पुन: पधारें । उत्तरायण तथा दक्षिणायण आपकी जीवित अवस्था में ही व्यतीत हों ॥५,३०.७॥

मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा ।
निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ॥५,३०.८॥

हे रोगी मनुष्य ! आप भयभीत न हों । हम आपको इस लोक में वृद्धावस्था तक जीवित रहने वाला बनाते हैं । हम आपके अंगों से यक्ष्मा तथा अंग – ज्वर बाहर निकाल देते हैं ॥५,३०.८॥

अङ्गभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः ।
यक्ष्मः श्येन इव प्रापप्तद्वचा साढः परस्तराम् ॥५,३०.९॥

आपके अंगों की पीड़ा, अंगों का ज्वर, हृदय का रोग तथा यक्ष्मा रोग हमारी वाणी (मंत्र शक्ति) से पराजित होकर बाज़ पक्षी के समान दूर भाग जाएँ ॥५,३०.९॥

ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः ।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् ॥५,३०.१०॥

निद्रारहित तथा जाग्रत् अवस्था के बोध और प्रतिबोध यह दो ऋषि हैं। वह दोनों आपके प्राण की सुरक्षा करने वाले हैं। वह आपके अन्दर दिन-रात जागते हैं ॥५,३०.१०॥

अयमग्निरुपसद्य इह सूर्य उदेतु ते ।
उदेहि मृत्योर्गम्भीरात्कृष्णाच्चित्तमसस्परि ॥५,३०.११॥

यह अग्निदेव समीप में रखने योग्य हैं। यहाँ आपके लिए सूर्यदेव उदित हों । आप घोर अन्धकार रूपी मृत्यु से निकलकर उदय को प्राप्त हों ॥५,३०.११॥

नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे नमः पितृभ्य उत यह नयन्ति ।
उत्पारणस्य यो वेद तमग्निं पुरो दधेऽस्मा अरिष्टतातयह ॥५.३०.१२॥

जो हमें ले जाते हैं, उन यमदेव के लिए नमन है, उन पितरों के लिए नमन है तथा मृत्यु के लिए नमन है । जो अग्निदेव पार करना जानते हैं, उनको हम कल्याण वृद्धि के लिए सामने प्रस्तुत करते हैं ॥५.३०.१२॥

ऐतु प्राण ऐतु मन ऐतु चक्षुरथो बलम् ।
शरीरमस्य सं विदां तत्पद्भ्यां प्रति तिष्ठतु ॥५.३०.१३॥

प्राण, मन, आँख तथा बल इसके समीप आएँ। इसका शरीर बुद्धि के अनुसार गमन करे और यह अपने पैरों पर खड़ा हो जाए ॥५.३०.१३॥

प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं समीरय तन्वा सं बलेन ।

वेत्थामृतस्य मा नु गान् मा नु भूमिगृहो भुवत्॥५,३०.१४॥

हे अग्ने ! आप इस व्यक्ति को प्राण तथा चक्षु से संयुक्त करें और शरीर बल से भलीप्रकार संयुक्त करके प्रेरित करें । हे अग्निदेव ! आप अमृत को जानने वाले हैं । यह व्यक्ति इस लोक से न जाए और (मिट्टी में मिलकर – मरकर) पृथ्वी को अपना घर न बनाए ॥५,३०.१४॥

मा ते प्राण उप दसन् मो अपानोऽपि धायि ते ।
सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायछतु रश्मिभिः ॥५,३०.१५॥

हे व्याधिग्रस्त मनुष्य ! आपका प्राण विनष्ट न हो और आपका अपान आच्छादित न हो । अधिष्ठाता सूर्यदेव अपनी किरणों के द्वारा आपको मृत्यु से ऊपर उठाएँ ॥५,३०.१५॥

इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा ।
त्वया यक्ष्मं निरवोचं शतं रोपीश्च तक्मनः ॥५,३०.१६॥

यह अन्दर बँधी हुई, बोलने वाली जिह्वा कहती है कि आपके साथ रहने वाले भय-रोग तथा ज्वर- रोग की सैकड़ों पीड़ाओं को हम दूर करते हैं ॥५,३०.१६॥

अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः ।
यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे ।
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः ॥५,३०.१७॥

जिस मृत्यु को निश्चितरूप से प्राप्त करने के लिए आप उत्पन्न हुए हैं, ऐसा यह अपराजित मृत्यु का लोक देवों को अत्यधिक प्रिय हैं; किन्तु हे मनुष्य ! हम आपका आवाहन करते हैं, आप वृद्धावस्था से पूर्व न मरें ॥५,३०.१७॥

॥अथर्ववेद – पञ्चमं काण्डम्॥

सूक्त ३१- कृत्यापरिहरण सूक्त

कृत्या का प्रतिहरण

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥५,३१.१॥

अभिचारकों ने जिसको कच्ची मिट्टी के बर्तन में किया है, जिसको धान, जौ, गेहूँ, उपवाक् (इन्द्र जौ या कुटज,तिल, कंगनी आदि मिश्र धान्यों में किया है, जिसको कुक्कुट आदि के कच्चे मांस में किया है, ऐसी कृत्या को हम अभिचारकों के ऊपर पुनः लौटाते हैं ॥५,३१.१॥

यां ते चक्रुः कृकवाकावजे वा यां कुरीरिणि ।
अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥५,३१.२॥

जिस कृत्या को अभिचारकों ने मुर्गे पर किया है अथवा जिसको प्रचुर बाल वाले बकरे पर किया है अथवा जिसको भेड़ पर किया है, ऐसी कृत्या को हम अभिचारकों के ऊपर पुनः लौटाते हैं ॥५,३१.२॥

यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति ।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥५,३१.३॥

जिस कृत्या को अभिचारकों ने एक खुर वाले पशुओं पर किया है, जिसको दोनों ओर दाँत वाले गधे पर किया है, उस कृत्या को हम अभिचारकों के ऊपर पुनः लौटाते हैं ॥५,३१.३॥

यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम् ।
क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥५,३१.४॥

जिस कृत्या को अभिचारकों ने मनुष्यों द्वारा पूजित भक्षणीय पदार्थों में ढककर खेतों में किया है, उस कृत्या को हम अभिचारकों के ऊपर पुन: लौटाते हैं ॥५,३१.४॥

यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः ।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥५,३१.५॥

जिस कृत्या को बुरे चित्त वाले अभिचारकों ने गार्हपत्य की पूर्व अग्नि में किया है, जिसको यज्ञशाला में किया है, उस कृत्यों को हम अभिचारकों के ऊपर पुन: लौटाते हैं ॥५,३१.५॥

यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने ।
अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥५,३१.६॥

जिस कृत्या को अभिचारकों ने सभा में किया है, जिसको जुए के पाशों में किया है, उस कृत्या को हम अभिचारकों के ऊपर पुन: लौटाते हैं ॥५,३१.६॥

यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे ।
दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥५,३१.७॥

जिस कृत्या को अभिचारकों ने सेनाओं में किया है, जिसको बाणरूप हथियारों पर किया तथा जिसको दुन्दुभियों में किया है, उस कृत्या को हम अभिचारकों के ऊपर पुन: लौटाते हैं। ॥५,३१.७॥

यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः ।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥५,३१.८॥

जिस कृत्या को अभिचारकों ने कुएँ में डालकर किया है, जिसको श्मशान में गाड़ दिया है तथा जिसको घर में किया है, उसे कृत्या को हम अभिचारकों के ऊपर पुन: लौटाते हैं ॥५,३१.८॥

यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संकसुके च याम् ।

म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं पुनः प्रति हरामि ताम् ॥५,३१.९॥

जिस कृत्या को अभिचारकों ने मनुष्य की हड्डी में किया है, जिसको प्रज्वलित अग्नि में किया है, उस कृत्या को हम चोरी से अग्नि प्रज्वलित करने वाले मांसभक्षी अभिचारकों के ऊपर पुनः लौटाते हैं ॥५,३१.९॥

अपथेना जभारैनां तां पथेतः प्र हिण्मसि ।
अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्त्या ॥५,३१.१०॥

जो मनुष्य अज्ञानतावश, कुमार्ग से हम मर्यादापालकों पर कृत्या को भेजता है, हम उसको उसी मार्ग से उसके ऊपर भेजते हैं ॥५,३१.१०॥

यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ॥५,३१.११॥

जो मनुष्य हमारे ऊपर कृत्या प्रयोग करके हमारी अँगुलियों तथा पैरों को विन करना चाहते हैं, वह वैसा करने में सक्षम न हों; वह अभागे हम भाग्यशालियों के लिए कल्याण ही करें ॥५,३१.११॥

कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम् ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया ॥५,३१.१२॥

गुप्त रूप से काम करने वालों, गालियाँ देने वालों और अन्ततः दुःख देने वालों को इन्द्रदेव अपने विशाल हथियारों से नष्ट कर डालें और अग्निदेव अपनी ज्वालाओं से बींध डालें ॥५,३१.१२॥

॥ इति पंचम काण्डम् ॥